ओ३म्

हनूमान् का वास्तविक स्वरूप

लेखक

डॉ० शिवपूजनसिंह कुशवाह एम. ए.

सम्पादक

परमहंस स्वामी जगदीशवरानन्द सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक :
गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क
दिल्ली-११०००६

संस्करण : प्रथम, जून १९८६

१५/-
मूल्य १५.०० रुपये

मुद्रक :
अजय प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा
दिल्ली-३२

दो शब्द

'हनुमानादि वानर थे या मनुष्य'—यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। लेखक ने वाल्मीकीय रामायण के शतशः प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि हनुमानादि जंगली बन्दर नहीं थे, अपितु सभ्य मनुष्य ही थे। उनका रहन-सहन, रीति-रिवाज, राज्य-संचालन, वस्त्र-परिधान, वेद एवं व्याकरण का अध्ययन, सन्ध्योपासन, यज्ञोपवीतधारण, भवन-निर्माण का कौशल आदि सभी बातें उन्हें मनुष्य सिद्ध करती हैं।

इस पुस्तक के अध्ययन से उन लोगों की भ्रान्ति अवश्य दूर हो जाएगी, जो उन्हें बन्दर समझते हैं।

इस उत्तम पुस्तक के प्रणयन के लिए लेखक धन्यवाद के पात्र हैं।

वेद सदन
एच १/२ माडल टाउन
दिल्ली-९
९-५-८६

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द सरस्वती

हनूमान् का वास्तविक स्वरूप

श्री हनूमान्जी की उत्पत्ति

हनूमान्जी की जन्म-कथा भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार की पाई जाती है पर इस विषय में सभी एकमत हैं कि हनूमान् के पिता केसरी और माता अंजनी थी। किसी भी प्राणी का जन्म एक बाप द्वारा एक ही माता के गर्भ से देखा जाता है परन्तु हनूमान् केसरी और अंजनी के अतिरिक्त, महादेव-पार्वती तथा वायु (मरुत्) के पुत्र भी कहे गये हैं, अर्थात् ३ पिताओं से हनूमान्जी उत्पन्न हुए, क्या यह माननीय है ? पुराणों ने बड़ा ही अनर्थ विश्व में फैलाया है। मिथ्या कथा लिखकर हनूमान्जी को कहीं का न छोड़ा।

शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता अध्याय २० श्लो० १ से १० तक[1]—

"अतः परं शृणु प्रीतया हनुमच्चरितं मुने !
यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः ॥१॥
चकार सुहितं प्रीत्या रामस्य परमेश्वरः।
तत्सर्व्वं चरितं विप्र शृणु सर्व्वसुखावहम् ॥२॥
एकस्मिन्समये शम्भुरद्भुतोतिकरः प्रभुः।
ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोः स हि वसद्गुणः ॥३॥
चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो यथा।
स्वं वीर्यम्पातयामास रामकार्य्यार्थमीश्वरः ॥४॥
तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते।
प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात् ॥५॥
तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः।
कर्णद्वारा तथांजन्यां रामकार्यार्थमाहितम् ॥६॥

---

१. "श्री शिवमहापुराणम्" पृष्ठ ६१४ [संवत् २०२० वि० में पण्डित पुस्तकालय काशी द्वारा प्रकाशित] पुस्तकाकार।

ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्।
शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः ॥७॥
हनूमान्स कपीशानः शिशुरेव महाबलः।
रविबिम्बं बभक्षाशु ज्ञात्वा लघुफलम्प्रगे ॥८॥
देवप्रार्थनया तं सोऽस्यजज्ज्ञात्वा महाबलम्।
शिवावतारं च प्राप वरान्दत्तान्सुरर्षिभिः ॥९॥
स्वजनन्यन्तिकं प्रागादथ सोऽति प्रहर्षितः।
हनूमान्सर्वमाचख्यौ तस्यै तद्वृत्तमादरात् ॥१०॥"

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत भा० टी०—

"नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! इसके आगे हनुमान्जी का चरित्र सुनो, जिस प्रकार हनुमान्जी के रूप से शिवजी ने सुन्दर लीला की है ॥१॥ हे प्रिय ! परमेश्वर शिव ने प्रीति करके रामचन्द्रजी का परमहित किया है, उन सब सुखों को देनेवाले चरित्र को सुनो ॥२॥ एक समय गुणयुक्त लीला करनेवाले, प्रभु शिव ने विष्णु का मोहिनीरूप देखा ॥३॥ तो कामदेव के बाण से ताड़ित हुए शिवजी ने अपने-आपको काम से व्याकुल किया और रामचन्द्रजी के कार्य के अर्थ अपना वीर्य गिराया ॥४॥ तब आदर से रामचन्द्र के कार्य के अर्थ मन से शिवजी के द्वारा प्रेरणा किये हुए उन सप्त ऋषियों ने उस वीर्य को पत्ते पर स्थापित किया ॥५॥ उन महर्षियों ने वह शिवजी का वीर्य गौतम की पुत्री में कर्ण के द्वारा तथा अंजनी में रामचन्द्रजी के कार्यार्थ प्रवेश किया ॥६॥ उस समय उस वीर्य से महाबली तथा पराक्रमयुक्त वानर के शरीरवाले हनुमान् नामक शिवजी उत्पन्न हुए ॥७॥ वह महाबली वानर हनुमान् बालकपन में ही सूर्य को लघुफल जान सूर्यमण्डल को खाने को उद्यत हुए ॥८॥ और देवताओं की प्रार्थना से सूर्य को त्यागा, तब देवता तथा ऋषियों ने महाबली शिव का अवतार जान उनको वरदान दिये ॥९॥ तब वह हनुमान्जी अति प्रसन्न हो अपनी माता के निकट गये और उससे आदरपूर्वक सब वृत्तान्त (वर पाने का) कहा ॥१०॥"[1]

---

१. "शिवमहापुराण" पृष्ठ ६४३ [संवत् २०१६ वि० सन् १९५९ ई० में खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष—'श्री वेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस, बम्बई-४ द्वारा प्रकाशित]।

समीक्षा—आख्यायिकाकार शैवों ने हनूमान् को शिवावतार (रुद्रावतार) सिद्ध करने के लिए यह उपर्युक्त आख्यायिका लिखी जो सर्वथा अश्लील, सृष्टि-क्रमविरुद्ध और अज्ञानमूलक है।

हनूमान् को शिव का अवतार सिद्ध करने के लिए यह कथा गढ़ी गई है, इसलिए शिव ने स्वयं अपना वीर्य अपनी इच्छा से गिरा दिया, न कि वीर्य पार्वती के रूप के कारण स्खलित हुआ। जब वीर्य गिरा तो उसी समय सप्तर्षि कहाँ से आ गये ? और 'पत्ते पर लेकर उसे सुरक्षित रखा' यह भी महागप्प है। सप्तर्षि कौन हैं, पुराणकर्त्ता ने नहीं लिखा, नहीं तो पोल खुल जाती। उत्तरी ध्रुव में सप्तर्षि-मण्डल है, जो बराबर ध्रुव के चारों ओर घूमता दिखलाई देता है; दूसरा सप्तर्षि-मण्डल इसी शरीर में दो नेत्र, दो कान, दो नाक, एक जीभ है इस प्रकार सप्त (७) ऋषि हैं—"सप्त ऋषयः प्रति हिता शरीरे" यह वेदमन्त्र है। इस कथाकार से पूछना चाहिए कि इनमें से कौन आये थे ? सो जन्म में भी शैव लोग इसका उत्तर नहीं दे सकते। जब सप्तर्षियों का कथन ही सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो गया तब पत्ते पर वीर्य का सुरक्षित रखना और अंजनी के कान में डालना तो स्वयं ही असिद्ध हो गया। पुनश्च कान में वीर्य डालने से सन्तान कैसे होगी ? यह तो गप्पों की परदादी है।

अतः शिवपुराण की सारी कथा असम्भव एवं सृष्टिक्रमविरुद्ध होने से इसे बीसवीं शताब्दी में कोई भी बुद्धिमान् मान नहीं सकता। निष्कर्ष यह निकला कि हनूमान् न तो शंकर के अवतार थे, न शिव के वीर्य से भवानी में उत्पन्न हुए थे वरन् केसरी के क्षेत्रज (नियोगज) पुत्र थे।

वायुनन्दन, इसपर कवि की कल्पना देखिए—

भविष्यपुराण में—

"शिवोऽपि च स्वपूर्वार्द्धाज्जातो वै मानसोत्तरे।
गिरौ यत्र स्थिता देवी गौतमस्य तनूद्भवा।
अञ्जना नाम विख्याता कीशकेसरिभोगिनी ।।३२।।
रौद्रं तेजस्तदा घोरं मुखे केसरिणो ययौ।
स्मरातुरः कपीन्द्रस्तु बुभुजे तां शुभाननाम् ।।३३।।
एतस्मिन्नंतरे वायुः कपीन्द्रस्य तनौ गतः।
वांछितामंजनां शुभ्रां रमयामास वै बलात् ।।३४।।

द्वादशाब्दमतो जातं दम्पत्योर्मैथुनस्तयोः।
तदनु भ्रूणमासाद्य वर्षमात्रं हि सावधत् ॥३५॥
पुत्रो जातस्स रागात्मा स रुद्रो वानराननः।
कुरूपाच्च ततो मात्रा प्रक्षिप्तोऽभूद् गिरेरधः ॥३६॥
बलादागत्य बलवान्दृष्ट्वा सूर्यमुपस्थितम्।
विलिलय भगवान्रुद्रो देवस्तत्र समागतः ॥३७॥
वज्रसंताडितो वापि न तत्याज तदा रविम्।
भयभीतस्तदा प्रांशुस्सूर्यं त्राहीति जल्पितः ॥३८॥
श्रुत्वा तदार्तवचनं रावणो लोकरावणः।
पुच्छे गृहीत्वा तं कीशं मुष्टियुद्धमचीकरत् ॥३९॥
तदा तु केसरिसुतो रविं त्यक्त्वा रुषान्वितः।
वर्षमात्रं महाघोरं मल्लयुद्धं चकार ह ॥४०॥
श्रमितो रावणस्तत्र भयभीतस्समंततः।
पलायनपरो भूतः कीशरुद्रेण ताडितः ॥४१॥

—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, चतुर्थ खण्ड, अध्याय १३ श्लोक ३२ से ४१ तक][1]

अर्थ—"एक बार शिवजी मानसोत्तर पर्वत पर गये। वहाँ गौतम की पुत्री अंजना, केसरी की पत्नी रहती थी। शिवजी का तेज (वीर्य) केसरी के मुख में चला गया और उससे कामातुर होकर केसरी अंजना से भोग करने लगा। इसी बीच में वायु ने भी केसरी के शरीर में प्रवेश किया और वह बलपूर्वक उसके प्रभाव से १२ वर्ष तक अंजना से विषयभोग करता रहा। इस लम्बे मैथुन से अंजना के गर्भ रह गया और एक वर्ष के पश्चात् वानर के सदृश मुखवाले रुद्र (हनूमान्) जी को जन्म दिया जो कि अत्यन्त कुरूप था। इससे माता ने उसे त्याग दिया। हनूमान् बालक ने बलपूर्वक सूर्य को निगल लिया। महादेवजी देवताओं के साथ वहाँ आ गये किन्तु वज्र से ताडित होने पर भी उन्होंने सूर्य को नहीं

---

१. भविष्य महापुराण, सटिप्पणी मूलमात्र (पुस्तकाकार) पृष्ठ ५६६
—[संवत् २०१५ वि०, सन् १९५९ ई० में 'श्री वेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस, बम्बई, द्वारा प्रकाशित]

छोड़ा, तब सूर्य ने भयभीत होकर त्राहि-त्राहि (बचाओ-बचाओ) की पुकार की, तब उसके दीन वचनों को सुनकर रावण ने हनूमान् की पूंछ पकड़कर खींची। इसपर हनूमान् ने सूर्य को तो छोड़ दिया परन्तु क्रोधित होकर रावण से युद्ध करने लगे और एक वर्ष तक उससे मल्लयुद्ध करते रहे। रावण थक गया और डरकर तथा हनूमान्जी से ताडित होकर वहां से भाग गया।"

समीक्षा—भविष्यपुराण की उपर्युक्त कथा शिवपुराण की कथा से नितान्त भिन्न है। दोनों में सही कौन है ? जब पौराणिकों के मत में अष्टादश पुराणों के रचयिता एक ही व्यक्ति वेदव्यास जी हैं, तब उत्पत्ति तो एक प्रकार की होनी चाहिए। यह पुराणलीला है। वास्तव में दोनों कथाएं काल्पनिक एवं मिथ्या हैं।

इस कथा से यह बात तो सिद्ध है कि अंजना मनुष्य-कन्या थी, अतः केसरी भी मनुष्य ही था, आजकल के समान वानर पशु न था। ऐसी दशा में हनूमान्जी पूंछवाले वानर पशु नहीं वरन् मनुष्य थे।

शिवपुराण की कथा में शिव-वीर्य अंजना के कान में डाला गया, पर इस कथा में केसरी के मुख में, कल्पना मिथ्या है न ? जैसे कान में वीर्य डालना असत्य है उसी प्रकार मुख में वीर्य डालना भी मिथ्या ही है; क्योंकि वहां सप्तर्षि भी कोई नहीं था, तो वीर्य का पतन और पत्ते में लेकर सुरक्षित रखना और मुख में डालना ये दोनों बातें स्वयं मिथ्या सिद्ध हो जाती हैं और प्रमाण की आवश्यकता ही क्या रही ? दोनों में सत्य कौन ? फिर बारह वर्ष तक केसरी भोग करता ही रह गया, क्या यह सम्भव है ? इसे तो पौराणिक ही बतलावेंगे कि यह महा-घोटाला क्यों ? विश्व में जो न कभी हुआ, न होगा और न हो सकता है। सृष्टि-नियमविरुद्ध बातें कालत्रय में मिथ्या होती हैं।

अतः हनूमान्जी न शंकर-पार्वती के पुत्र थे और न इस कथा के अनुसार वायु के ही पुत्र थे। तर्क की कसौटी पर कसने से उक्त दोनों कथाएं मिथ्या सिद्ध हो जाती हैं।

हनूमान्जी का उत्पन्न होते ही सूर्य को निगलना भी गप्पों का सिरताज है। कहां सूर्य पृथिवी से साढ़े तेरह लाख गुणा बड़ा और नौ करोड़ तीस लाख मील पृथिवी से दूर और कहां हनूमान् ! क्षुद्र शरीर बालक वानर के साथ कैसी असम्भव कथा रची गई है ! पुनः सूर्य के पास रावण कहां से, क्यों कूद पड़ा यह भी मिथ्या कल्पनामात्र है। सूर्य तो अग्नि का पिण्ड है, वहां जाना भी असम्भव है उसका

निगलना तो और कठिन है। यह तो कवि की कल्पना की उड़ान है। हनूमान्जी व रावण का मल्लयुद्ध कहाँ पर हुआ ? युद्ध के लिए शरीर का आधार चाहिए। क्या वहाँ पर उनको मल्लयुद्ध के लिए भूमि थी ? या पुराणकर्त्ता की छाती पर लड़े ? यह सब कवि की कल्पना नहीं तो क्या है ? ऐतिहासिक सत्य का इसमें लेशमात्र भी नहीं है।

हनूमान् नाम क्यों पड़ा, इसपर भी लालबुझक्कड़ों ने एक कथा गढ़ डाली कि जब हनूमान्जी उत्पन्न हुए तो सूर्य को एक फल समझकर उसको लेने के लिए उछल पड़े। यह विपत्ति देखकर इन्द्र ने वज्र मारा जिससे उनकी बायीं ठुड्डी टूट गई इसी से इनका नाम हनूमान् पड़ा।

यही कथा वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड में देखिए, वहाँ न सूर्य को निगलने का तथा न इन्द्र द्वारा वज्र से मारने का वर्णन है—

उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा बालः किल बुभुक्षितः।
त्रियोजनसहस्रं तु अध्वानमवतीर्य हि ॥१२॥
आदित्यमाहरिष्यामि न मे क्षुत् प्रतियास्यति।
इति निश्चित्य मनसा पुप्लुवे बलदर्पितः ॥१३॥
अनाधृष्यतमं देवमपि देवर्षिराक्षसैः।
अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ ॥१४॥
पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले।
किंचिद् भिन्ना दृढहनुर्हनूमानेष तेन वै ॥१५॥

—[वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २८]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' कृत भा० टी०—

'जब यह बालक था उस समय की बात है, एक दिन इसको बहुत भूख लगी थी। उस समय उगते हुए सूर्य को देखकर यह तीन हजार योजन ऊँचा उछल गया था। उस समय मन-ही-मन यह निश्चय करके कि 'यहाँ के फल आदि से मेरी भूख नहीं जाएगी, इसलिए सूर्य को (जो आकाश का दिव्य फल है) ले आऊँगा' यह बलाभिमानी वानर ऊपर को उछला था ॥१२॥-॥१३॥ देवर्षि और राक्षस भी जिन्हें परास्त नहीं कर सकते, उन सूर्यदेव तक न पहुँचकर यह वानर उदयगिरि पर ही गिर पड़ा ॥१४॥ 'वहाँ के शिलाखण्ड पर गिरने के कारण' इस वानर

की एक हनु (ठोढ़ी) कुछ कट गई; साथ ही अत्यन्त दृढ़ हो गई, इसलिए यह 'हनूमान्' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५॥'[1]

समीक्षा—यह कथा भी सर्वथा खयाली पुलाव है। यहां पर सूर्य के निगलने की बात नहीं है, निगलने से पहले ही गिर पड़े थे। इस प्रकार सभी कथाओं में भिन्नता है।

पुनः वाल्मीकीय रामायण में हनूमान्‌जी की जन्म-कथा—

(जामवान् हनूमान्‌जी से ही कहते हैं)—

अप्सराऽप्सरसां श्रेष्ठा विख्याता पुञ्जिकस्थला।
अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः ॥८॥
विख्याता त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिमा भुवि।
अभिशापादभूत् तात कपित्वे कामरूपिणी ॥९॥
दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः।
मानुषं विग्रहं कृत्वा रूपयौवनशालिनी ॥१०॥
विचित्रमाल्याभरणा कदाचित् क्षौमधारिणी।
अचरत् पर्वतस्याग्रे प्रावृडम्बुदसंनिभे ॥११॥
....
तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत।
ततो हि नामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम् ॥२४॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड सर्ग ६६]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' कृत भा० टी०—

"(वीरवर ! तुम्हारे प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार है)—

पुञ्जिकस्थला नाम से विख्यात जो अप्सरा है, वह समस्त अप्सराओं में अग्रगण्य है। तात ! एक समय शापवश वह कपियोनि में अवतीर्ण हुई। उस समय वह वानरराज महामनस्वी कुञ्जर की पुत्री इच्छानुसार रूप धारण करने-वाली थी। इस भूतल पर उसके रूप की समानता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री

---

१. "श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण", द्वितीय भाग, पृष्ठ ११२२-११२३ [संवत् २०२५ वि० में गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]

नहीं थी। वह तीनों लोकों में विख्यात थी। उसका नाम अञ्जना था। वह वानरराज केसरी की पत्नी हुई ॥८-९॥ एक दिन की बात है, रूप और यौवन से सुशोभित होनेवाली अञ्जना मानवी स्त्री का शरीर धारण करके वर्षाकाल के मेघ की भाँति श्याम कान्तिवाले एक पर्वतशिखर पर विचर रही थी। उसके अंगों पर रेशमी साड़ी शोभा पाती थी। वह फूलों के विचित्र आभूषणों से विभूषित थी ॥१०-११॥ उस विशाललोचना बाला का सुन्दर वस्त्र तो पीले रंग का था, किन्तु उसके किनारे का रंग लाल था। वह पर्वत के शिखर पर खड़ी थी। उसी समय वायु देवता ने उसके उस वस्त्र को धीरे से हर लिया ॥१२॥ तत्पश्चात् उन्होंने उसकी परस्पर सटी हुई गोल-गोल जांघों, एक-दूसरे से लगे हुए पीन उरोजों तथा मनोहर मुख को भी देखा ॥१३॥ उसके नितम्ब ऊँचे और विस्तृत थे। कटिभाग बहुत ही पतला था। उसके सारे अंग परम सुन्दर थे। इस प्रकार बलपूर्वक यशस्विनी अञ्जना के अंगों का अवलोकन करके पवन देवता काम से मोहित हो गये ॥१४॥ उनके सम्पूर्ण अंगों में कामभाव का आवेश हो गया। मन अञ्जना में ही लग गया। उन्होंने उस अनिन्द्य सुन्दरी को अपनी दोनों विशाल भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया। अञ्जना उत्तम व्रत का पालन करनेवाली सती नारी थी, अतः उस अवस्था में पड़कर वह वहीं घबरा उठी और बोली—कौन मेरे इस पातिव्रत्य का नाश करना चाहता है ? ॥१६॥ अञ्जना की बात सुनकर पवनदेव ने उत्तर दिया—'सुश्रोणि ! मैं तुम्हारे एकपत्नी-व्रत का नाश नहीं कर रहा हूँ, अतः तुम्हारे मन से यह भय दूर हो जाना चाहिए ॥१७॥ यशस्विनि ! मैंने अव्यक्त रूप से तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसिक संकल्प के द्वारा तुम्हारे साथ समागम किया है। इससे तुम्हें बल-पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्राप्त होगा ॥१८॥ वह महान् धैर्यवान्, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लांघने और छलांग मारने में मेरे समान होगा' ॥१९॥ महाकपे ! वायुदेव के ऐसा कहने पर तुम्हारी माता प्रसन्न हो गईं। महाबाहो ! वानरश्रेष्ठ ! फिर उन्होंने तुम्हें एक गुफा में जन्म दिया ॥२०॥ बाल्यावस्था में एक विशाल वन के भीतर एक दिन उदित हुए सूर्य को देखकर तुमने समझा कि यह भी कोई फल है; अतः उसे लेने के लिए तुम सहसा आकाश में उछल पड़े ॥२१॥ महाकपे ! तीन सौ योजन ऊँचे जाने के बाद सूर्य के तेज से आक्रान्त होने पर भी तुम्हारे मन में खेद या चिन्ता नहीं हुई ॥२२॥ कपिप्रवर ! अन्तरिक्ष

में जाकर जब तुरन्त ही तुम सूर्य के पास पहुँच गये, तब इन्द्र ने कुपित होकर तुम्हारे ऊपर तेज से प्रकाशित वज्र का प्रहार किया ॥२३॥ उस समय उदयगिरि के शिखर पर तुम्हारे हनु (ठोडी) का बायाँ भाग वज्र की चोट से खण्डित हो गया। तभी से तुम्हारा नाम हनूमान् पड़ गया ॥२४॥"[1]

समीक्षा—यदि यह कथा ज्यों-की-त्यों सत्य मान ली जाती है तो ऐतिहासिक दृष्टि से हनूमान् का जन्म संदिग्ध ही रह जाता है। वायु जड़ है, सर्वत्रगामी है, पंचभूतों में एक भूत है। जड़ वायु नारी को देखकर, मनुष्यवत् न कामी बन सकता है और न किसी से सम्भोग कर सकता है। आजकल एक से एक अञ्जना से बढ़कर उन्नतकुचा नारियाँ देखी जाती हैं, पर वायु क्यों नहीं कामातुर होकर पकड़ता है? उन्हें मनुष्यवत् पकड़कर भोग क्यों नहीं करता? ऐसा न सुना गया न देखा गया। कथा आलंकारिक है। इसलिए मानना पड़ेगा कि वायु नाम का कोई पुरुष था जिसने अञ्जना के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके साथ भोग किया और हनूमान्जी उत्पन्न हुए। इन्हें क्षेत्रज कह सकते हैं।

नियोग से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाते हैं इसलिए हनूमान् केसरी के क्षेत्रज पुत्र हैं जैसाकि रामायण में ही स्पष्ट लिखा हुआ है—

स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः ॥२९॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः ॥३०॥[2]

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६६]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"इस प्रकार तुम केसरी के क्षेत्रज पुत्र हो। तुम्हारा पराक्रम शत्रुओं के लिए भयंकर है। तुम वायुदेव के औरस पुत्र हो, इसलिए तेज की दृष्टि से भी उन्हीं के समान हो ॥२९-½॥

अतः हनूमान्जी केसरी के क्षेत्रज पुत्र थे।

'हनूमान्चालीसा' किसी अज्ञानी का बनाया हुआ है जिसने हनूमान्जी को शंकर व पार्वती का पुत्र लिख मारा जिससे सर्वत्र मिथ्या प्रचार हो गया। सब

---

१. वही, प्रथम भाग, पृष्ठ ८४१-८४२ [संवत् २०२४ वि० में गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]
२. वही, पृष्ठ ८४२

ही एक ही माता-पिता से उत्पन्न होते हैं, पुनः हनूमान् के तीन पिता मानना हनूमद्भक्तों की अज्ञानता और नासमझी है।

श्री हनूमान्जी की अद्‌भुत शक्ति व विद्वत्ता—

रामकथा के पात्रों में हनुमान्जी का बल, बुद्धि और अद्‌भुत कृत्यों के कर्त्ता तथा रामचन्द्रजी के अनन्य सेवक होने के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है। मध्यकालीन रामकथा-साहित्य में हनूमान्जी के चरित्र का जो विकास हुआ है उसका उत्कृष्ट उदाहरण तुलसी-साहित्य के द्वारा प्राप्त होता है। 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदासजी ने राम के भक्त होने के कारण और स्वतन्त्र रूप से भी हनूमान्जी के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए स्तोत्रों की रचना की है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त 'कवितावली', 'उत्तरकाण्ड' और 'हनूमान्-बाहुक' में भी उन्होंने स्वतन्त्र नायक के रूप में हनूमान् का गौरव-गान किया है। आदिकाव्य रामायण में वे कपिकुंजर तथा वायुपुत्र भी माने जाने लगे। प्रचलित रामायण में वानरत्व-विषयक विशेषणों के बाहुल्य से उनके वास्तविक वानरत्व की धारणा बनने लगी। तत्पश्चात् कपियोनि में रुद्रावतार और राम के आदर्श भक्त के रूप में उनकी पूजा होने लगी।[1]

हनूमान्जी का शारीरिक बल व शक्ति—

हनूमान्जी अनेक साहसिक कार्यों के कर्त्ता हैं।[2]

अनेक अद्‌भुत और महान् कृत्यों का श्रेय हनूमान्जी को प्राप्त है जैसे—सागर पार करना, अशोक वन-विध्वंस, लंका-दहन, द्रोणाचल-आनयन और युद्ध-विषयक पराक्रम। उनके द्रुमशिला-युद्ध, उनकी लांगूल के दांव-पेंच, उनके पाद-प्रहार, उनके विकराल तमाचे और थप्पड़ विश्व के एक अद्वितीय मल्ल का चित्र प्रस्तुत करते हैं। राम व लक्ष्मण को वे अपनी पीठ पर चढ़ाकर पम्पासर से ले गये थे। बड़े-बड़े पर्वत उनके शरीर के भार से दब जाते या कसमसा उठते वा फूट पड़ते थे। वे अणिमा-गरिमा सिद्धियों पर अधिकार रखनेवाले महान् योगी भी हैं।

---

१. श्री डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए० कृत "हिन्दी अनुशीलन" विशेषांक (प्रयाग) सन् १९६० ई०, पृ० ३४२ पर डॉ० कामिल बुल्के का लेख।

२. "Superlatives crowd round Hanuman as you contemplate him."—श्री एस० एस० शास्त्री कृत "लेक्चर्स ऑन रामायण" अध्याय १७ [सन् १९५२ ई०, मद्रास]

यौगिक सिद्धियाँ 'अणिमा' आदि आठ प्रकारों में संख्यात हैं, यथा—(१) अणिमा, (२) महिमा, (३) गरिमा, (४) लघिमा, (५) प्राप्ति, (६) प्राकाम्य, (७) ईशित्व, और (८) वशित्व।[1]

अणिमा व लघिमा—सागर को तैरते हुए पार कर लंका की द्वारपालिका 'लंकिनी' निशाचरी को निहत करने के पश्चात् जनकनन्दिनी के अन्वेषण-क्रम में श्री हनूमान्‌जी गोस्वामी तुलसीदास के मत से मशक के समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप धारण कर रात्रि में सारी लंकानगरी का निरीक्षण कर लेते हैं, किन्तु अत्यन्त अणु या लघु रूप होने के कारण वहाँ के निवासियों को उनका कुछ पता तक नहीं चलता। हनूमान्‌जी शत्रुओं के लिए सर्वथा अदृश्य हो गये थे (अध्यात्मरामायण ५।१।२)। अशोकवाटिका में पहुँचकर और सीसम वृक्ष के पत्तों में बैठे-बैठे वे जानकी माता को अपना परिचय देते हुए श्रीराम की अवस्था का वर्णन करते हैं (अध्यात्मरामायण ५।२।३)। इन विवृत्तियों से मारुति में अणिमा और लघिमा इन दो सिद्धियों की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा का परिचय मिल जाता है।

महिमा—सागर को पार करने के समय परीक्षाकारिणी सुरसा के साथ प्रतियोगिता में मारुति ने अपने शरीर को क्रमशः उससे प्रायः सौ योजनों तक विस्तृत किया था (अध्यात्मरामायण ५।१।२०; वाल्मीकीय रामायण ५।१।-१६५) और जब हनूमान्‌जी ने 'वानर-सेनाओं के साथ आकर श्रीराम राक्षस-मंडित लंका को क्षणभर में भस्म कर देंगे'—ऐसी बात कही, तब जानकीजी ने पूछा—"हे कपे! तुम तो अत्यन्त लघुशरीरवाले हो और अन्य वानर-भालू भी तो तुम्हारे ही समान लघुकाय होंगे, फिर वे ऐसे बलिष्ठ विशाल शरीरधारी राक्षसों से कैसे लड़ेंगे?" सीताजी द्वारा ऐसा सन्देह व्यक्त किये जाने पर महावीर मारुति ने उन्हें आश्वस्त कराते हुए अपने को स्वर्ण शैल के समान विशाल बना-कर अपनी अतुल शक्ति का परिचय दिया (अध्यात्म रामायण ५।३।६४-½)।

इन दोनों अवसरों पर इनका क्रमिक वर्धमान शरीर विशालता के कारण अनन्त आकाश में मानो समावेश नहीं पा रहा था।

गरिमा—एक बार हनूमान्‌जी गन्धमादन के एक भाग में अपनी पूँछ

---

१. "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिप्राकाम्यीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः॥" [अमरकोष, रामाश्रयी व्याख्या १।१।३४ (१७-१८)]।

फैलाकर स्वच्छन्द पड़े थे और भीमसेन उसको हटा न सके (महाभारत ३।१४७।-१५-१६, १९-२०)।

प्राप्ति—'प्राप्ति' सिद्धि के प्रतिष्ठित होने पर साधक योगी को इच्छित-वांछित पदार्थ मिल जाता है। श्रीमती सीताजी का अन्वेषण सर्वप्रथम इन्होंने ही किया [अध्यात्मरामायण ५।२।९-११]।

प्राकाम्य—'प्राकाम्य' सिद्धि की प्रतिष्ठा होने पर साधक जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उसे अचिर उपलब्ध हो जाती है। श्रीरामजी ने उनकी अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें अनपायिनी भक्ति का वर प्रदान किया [वाल्मीकीय रामायण ७।४०।१५-२४; अध्यात्म रामायण ६।१६।१०-१४-½]।

ईशित्व—हनूमान्‌जी भगवान् श्रीराम की वानर-भालुओं की सेना का सम्यक् संचालन करनेवाले सफल सेनानायक थे और साथ ही परमभक्त भी थे, अतः ईशित्व-सिद्धि का भी प्रतिष्ठित रूप महावीरजी में साक्षात् दृष्टिगोचर होता है।

वशित्व—वशित्व-सिद्धि के प्रतिष्ठित हो जाने पर व्यक्ति में आत्मजयित्व भी स्वतः सिद्ध हो जाता है। हनूमान्‌जी अखण्ड ब्रह्मचारी एवं पूर्ण जितेन्द्रिय थे (रामरक्षास्तोत्र ३३) अतः अतुलित बलधामता उनमें निरन्तर विद्यमान रहती है।

बल-पुरुषार्थ—

महामारुति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की इयत्ता न थी। वे देव, दानव और मानव आदि समस्त प्राणियों के लिए अजेय थे। वे कभी किसी से पराजित नहीं हुए, न कभी आहत ही हुए। यद्यपि एक बार मेघनाद ने इन्हें बन्धन में डाल दिया था, परन्तु वहाँ इनके बँध जाने का कारण कुछ और ही था। जब मेघनाद ने इनपर ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त अस्त्र चलाया, तब उस ब्रह्मास्त्र का महत्त्व रखने के लिए ही स्वयं उसमें बँध गये थे। यदि वे चाहते तो उस ब्रह्मास्त्र को भी व्यर्थ कर देते, पर ऐसा न करने में दो कारण थे—प्रथम यह कि यदि वह अस्त्र विफल हो जाता तो जगत्स्रष्टा की अपार महिमा मिट जाती।

जाम्बवान् के आदेश पर ये हिमालय से ओषधियुक्त पर्वत को ही उठा लाये, जिससे उन ओषधियों के प्रयोग से मूर्च्छित श्रीराम, लक्ष्मण तथा समस्त

वानर पुनः स्वस्थ हो गये। लक्ष्मणजी के मूर्च्छित हो जाने पर जब श्रीराम विलाप करने लगे, तब सुषेण के आदेशानुसार हनूमान्जी पुनः हिमालय से ओषधियुक्त पर्वत ले आये और उसकी ओषधि के प्रयोग से लक्ष्मण स्वस्थ हुए। [वाल्मीकीय रामायण ६।१०१।३०]

हनूमान्जी का ओषधिज्ञान—

हनूमान्जी को ओषधियों का भी पर्याप्त ज्ञान प्रतीत होता है चाहे वह सुषेण या जाम्बवान् की भाँति परिपक्व न रहा हो, अन्यथा इनको ओषधि लाने के हेतु न भेजा जाता।

श्री हनूमान्जी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् थे—

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥२६॥
तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥२७॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥२८॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' कृत भा० टी०—

"सुमित्रानन्दन ! ये महामनस्वी वानरराज सुग्रीव के सचिव हैं और उन्हीं के हित की इच्छा से यहाँ मेरे पास आये हैं ॥२६॥ लक्ष्मण ! इन शत्रुदमन सुग्रीव-सचिव कपिवर हनुमान् से, जो बात के मर्म को समझनेवाले हैं, तुम स्नेहपूर्वक मीठी वाणी में बातचीत करो ॥२७॥ जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता[1] ॥२८॥

हनूमान्जी व्याकरण के पूर्ण पण्डित थे—

"नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥"

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३]

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, पृष्ठ ६८१

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—

"निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुंह से कोई अशुद्धि नहीं निकली ॥२९॥"[1]

हनुमान्‌जी की स्वर, प्रक्रिया, और वाक् व्यवहार-पटुता—

(श्री रामचन्द्रजी ने कहा है कि)—

"न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥
अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् ।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥३१॥
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥३३॥"

—[वाल्मीकीयरामायण, किष्किन्धाकाण्ड सर्ग, ३]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' कृत भा० टी०—

"सम्भाषण के समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य सब अंगों से भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ ॥३०॥ इन्होंने थोड़े में ही बड़ी स्पष्टता के साथ अपना निवेदन किया है। रुक-रुककर अथवा शब्दों या अक्षरों को तोड़-मरोड़कर किसी ऐसे वाक्य का उच्चारण नहीं किया है, जो सुनने में कर्णकटु हो। इनकी वाणी हृदय में मध्यमा रूप से स्थित है और कण्ठ से वैखरी रूप में प्रकट होती है। अतः बोलते समय इनकी आवाज न बहुत धीमी रही है, न बहुत ऊँची। मध्यम स्वर में ही इन्होंने सब बातें कही हैं ॥३१॥"

"ये संस्कार [व्याकरण के नियमानुकूल शुद्ध वाणी को संस्कार-सम्पन्न (संस्कृत) कहते हैं] और क्रम [शब्दोच्चारण की शास्त्रीय परिपाटी का नाम क्रम है] से सम्पन्न, 'अद्भुत', अविलम्बित [बिना रुके धाराप्रवाह रूप से बोलना अविलम्बित कहलाता है] तथा हृदय को आनन्द प्रदान करनेवाली कल्याणमयी वाणी का उच्चारण करते हैं ॥३२॥ हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीनों स्थानों

---

१. वही, पृष्ठ ६८१

द्वारा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणी को सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा ! वध करने के लिए तलवार उठाये हुए शत्रु का हृदय भी इस अद्भुत वाणी से बदल सकता है। ३३।।"[1]

हनूमान्जी का ब्रह्मचर्य व अध्ययन—

हनूमान्जी ने गोकर्ण के ऋषियों तथा सूर्य से सम्पूर्ण व्याकरण तथा वेद-वेदाङ्ग का पूर्ण अध्ययन कर सम्पूर्ण विद्याओं और कला आदि में बृहस्पति की भांति पूर्ण योग्यता को प्राप्त किया।

हनूमान्जी आदर्श राजदूत—

(श्री रामचन्द्रजी ने कहा कि:—)

"एवं विधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु।
सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ।।३४।।
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः।
तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः।।३५।।"

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्कि० सर्ग ३]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"निष्पाप लक्ष्मण ! जिस राजा के पास इनके समान दूत न हो, उसके कार्यों की सिद्धि कैसे हो सकती है ।।३४।। जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणों से युक्त हों, उस राजा के सभी मनोरथ दूतों की बातचीत से ही सिद्ध हो जाते हैं ।।३५।।"[2]

श्री लक्ष्मणजी ने भी हनूमान्जी को विद्वान् कहा था—

"विदिता नो गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः ।।३७।।"

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"विद्वन् ! महामना सुग्रीव के गुण हमें ज्ञात हो चुके हैं" ।।३७।।[3]

---

१. वही, पृष्ठ ६८१-६८२
२. वही, पृष्ठ ६८२
३. वही, पृष्ठ ६८२

श्री हनूमान्जी सर्वशास्त्रविशारद थे

महर्षि अगस्त्यजी ने श्री रामचन्द्रजी को कहा कि :—

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापसौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥४४॥
असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन् सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥४५॥
ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥४६॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥४७॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३६]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"संसार में ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीति के विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्य में हनुमान्जी से बढ़कर हो ॥४४॥ ये असीम शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान् व्याकरण का अध्ययन करने के लिए शङ्काएँ पूछने की इच्छा से सूर्य की ओर मुंह रखकर महान् ग्रन्थ धारण किये उनके आगे-आगे उदयाचल से अस्ताचल तक जाते थे ॥४५॥ इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह, इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रों के ज्ञान तथा छन्दःशास्त्र के अध्ययन में भी इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई विद्वान् नहीं है ॥४६॥ सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञान तथा तपस्या के अनुष्ठान में ये देवगुरु बृहस्पति की बराबरी करते हैं। नौ व्याकरणों के सिद्धान्त को जाननेवाले ये हनूमान्जी आपकी कृपा से साक्षात् ब्रह्मा के समान आदरणीय होंगे ॥४७॥"[1]

हनूमान्जी अनेकभाषाविद् थे—

रावण की अशोकवाटिका में सीता की कुटिया के निकट वृक्ष पर छुपे हुए हनूमान्जी मन ही मन विचार कर रहे थे कि मैं सीताजी से बातें किये बिना ही वापस चला जाऊँ, तो यह सीताजी, श्री रामचन्द्रजी तथा मेरे लिए भी बहुत

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, द्वितीय भाग, पृष्ठ १५५५

बुरी बात होगी। यदि सीताजी के साथ वार्तालाप आरम्भ करूँ तो किस भाषा में बोलूं—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥१८॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥१९॥

—[वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग ३०]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"परन्तु ऐसा करने में एक बाधा है, यदि मैं द्विज की भांति संस्कृत वाणी का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जाएँगी ॥१८॥ ऐसी दशा में अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिसे अयोध्या के आसपास की साधारण जनता बोलती है। अन्यथा इन सती-साध्वी सीता को मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता ॥१९॥"[1]

हनूमान्जी सन्ध्याविधि भलीभांति जानते थे—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥४९॥
तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य सम्मता ॥५०॥
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥५१॥

—[वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग १४]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"यह प्रातःकाल की सन्ध्या (उपासना) का समय है। इसमें मन लगानेवाली और सदा सोलह वर्ष की ही अवस्था में रहनेवाली अक्षययौवना जनककुमारी सुन्दरी सीता सन्ध्याकालिक उपासना के लिए इस पुण्यसलिला नदी के तट पर अवश्य पधारेंगी ॥४९॥ जो राजाधिराज श्री रामचन्द्रजी की समादरणीया पत्नी है, उन शुभलक्षणा सीता के लिए यह सुन्दर अशोकवाटिका भी सब प्रकार

---

१. वही, पृष्ठ ९४०

से अनुकूल ही है ॥५०॥ यदि चन्द्रमुखी सीतादेवी जीवित हैं तो वे इस शीतल जलवाली सरिता के तट पर अवश्य पदार्पण करेंगी ॥५१॥"[1]

हनूमान्‌जी की वीरता का कार्य—समुद्र को पार करना—

क्या हनूमान्‌जी ने समुद्र को तैरकर पार किया था या उड़कर पार किया था? यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

हनूमान्‌जी सागर को तैर करके गये थे—

एष पर्वतसंकाशो हनुमान् मारुतात्मजः।
तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम् ॥२९॥
सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणाम्।
अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥६९॥
विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि।
पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥७१॥
मेरुमन्दरसंकाशानुद्‌गतान् सुमहार्णवे।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ॥७२॥
तस्य वेगसमुद्‌घुष्टं जलं सजलदं तदा।
अम्बरस्थं विबभ्राजे शरदभ्रमिवाततम् ॥७३॥

—[वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग १][2]

अर्थ—पर्वत के समान दृढ़ हनूमान् महावेगवान् (मानो वेगवान् वायु के पुत्र ही हों) वरुणालय (समुद्र) को तैरने लगे। पर्वतशिला की तरह सुन्दर दृढ़ अपनी (उरसा अर्थात्) छाती से समुद्र के तरंगों पर धक्का देते हुए महावेगवान् कपि तैरने लगे। (महान् खारे जल में) अर्थात् महासागर में लहरों के जाल को चीरते हुए कपि शार्दूल उसी प्रकार (वेग से) तैरने लगे जैसेकि आकाश में फेंकी हुई कोई वस्तु (जा रही हो), वा द्यावापृथिवी-आकाश में चल रहे हों। उस समुद्र में मेरुमन्दर (पर्वतों) के समान उठे हुए तरंगों को गिनते हुए के समान महावेगवान् हनूमान् लांघ गया (तैर गया)। उस समय (उसके तैरने के) वेग से ऊपर को फैंका हुआ जल मेघ के साथ आकाश में ऐसा शोभने लगा जैसाकि फैला हुआ शरद्

१. वही, पृष्ठ ९०२
२. वही, पृष्ठ ८४९, व ८५१

ऋतु का अभ्र वा बादल (हनूमान् के तैरने से पानी के छींटे बहुतायत से जो ऊपर उठते थे उन्हीं का समूह मेघवत् प्रतीत होता था। ऐसा भी ज्ञात होता है कि तैरने के समय मेघ भी छाये हुआ था)।

इस प्रकरण में बहुत-से श्लोक ऐसे भी हैं जिनसे प्रतीत होता है कि हनूमान् उड़ते हुए जाते थे, परन्तु उनका भावार्थ यह है कि हनूमान् बड़े वेग से जाते थे। अंग्रेजी भाषा में भी "फ्लाई" शब्द जिसका अर्थ "उड़ना" है "विशेष शीघ्रता के साथ चलने" के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ करता है। परन्तु "उड़ने" के तात्पर्य को न समझ पीछे से लोगों ने इस प्रकरण में बहुत-से श्लोक ऐसे भी प्रक्षिप्त कर दिये हैं जिनसे प्रतीत हो कि हनूमान् सचमुच आकाश में ही उड़ रहे थे। परन्तु हनूमान् मनुष्य थे पक्षी नहीं और बिना पंखवाले को आकाश में उड़ना सृष्टि-नियमविरुद्ध है (और वहाँ यह भी नहीं लिखा है कि हनूमान् किसी आकाश-यान पर जा रहे थे) अतः यही सिद्ध होता है कि समुद्र में हनूमान् के बड़े वेग से तैरने को ही उड़ने के साथ उपमा दी है। हनूमान् लंका से लौटते हुए भी समुद्र तैरकर ही भारत में आये। हनूमान् के इस तैरने का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

अपारमपरिश्रान्तश्चाम्बुधिं समगाहत।
हनूमान् मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति॥

[सुन्दरकाण्ड ५७।६]

अर्थात्—समगति से जानेवाले बिना थके हुए हनूमान् अपार सागर (अपार सागर के जल को) आहत करते हुए नील मेघजाल की तरह समुद्रजाल को काटते हुए जाने लगे।

....

महाशय सी० वी० वैद्य, एम० ए० ने जो यह लिखा है कि हनूमान् समुद्र फाँदकर भारत से लंका गये वह सर्वथा अयुक्त है।..."[1]

---

१. द्रष्टव्य : प्रो० रामदेवजी बी० ए०, गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी (हरिद्वार) विरचित भारतवर्ष का इतिहास (वैदिक तथा आर्षपर्व) पृष्ठ ३३८-३३९ (संवत् १९८० वि०, सन् १९२४ ई० में मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति)।

ब्रह्मचारी पं० अखिलानन्दजी, झरिया ने उपर्युक्त सुन्दरकाण्ड के श्लोकों द्वारा हनूमान्‌जी का समुद्र में तैरना ही अर्थ किया है।[1]

हनूमान्‌जी आदि वानर किसकी सन्तान थे ?

यदि वानर लोग बन्दरों की सन्तान थे, तो इनके हनूमान्, वाली, सुग्रीव, अंगद आदि नाम किसने रक्खे या रखवाये थे ? क्या आजकल भी बन्दरों में बच्चों के नामकरण-संस्कार कराये जाते हैं, और क्या वन आदि में स्वतन्त्र स्वच्छन्द विचरण करनेवाले बन्दरों के व्यक्तिगत पृथक्-पृथक् नाम होते हैं ? अथवा ये लोग उस समय के मनुष्यों के पालतू बन्दर थे जो उन पालनेवालों ने इनके नाम रख लिये हों। अध्ययनशील सज्जन जानते हैं, ऐसा कुछ नहीं था। इसलिए सीधा समझ में आता है कि इनके माता-पिता भी सभ्य और सुशिक्षित मनुष्य ही होंगे जिन्होंने इनके नाम रक्खे या रखवाये।

क्या वानर क्षत्रिय थे ?

श्री दुर्गाप्रसाद 'सनातनी' लिखते हैं— "...सम्पूर्ण वानर जाति क्षत्रियों की एक उच्चकोटि की जाति थी। उनमें बड़े-बड़े शूरवीर राजे-महाराजे, बड़े-से-बड़े शिल्प-इंजीनियर, महाबलशाली शूरवीर, वेदों व व्याकरण के उद्भट विद्वान्, वायुसेना के चालक व महायोगी हुए हैं।"[2]

श्री ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम' एम० ए०, सिद्धान्तशास्त्री, सम्पादक 'तपोभूमि' लिखते हैं :—"सम्पूर्ण वानरजाति क्षत्रियों की एक उच्चकोटि की जाति थी, उनमें बड़े-बड़े शूरवीर राजे-महाराजे, बड़े-से-बड़े शिल्पी (इंजीनियर), महाबलशाली शूरवीर, वेदों व व्याकरण के उद्भट विद्वान्, वायुसेना के चालक, तथा महायोगी विद्यमान थे।"[3]

वानर की व्युत्पत्ति व अर्थ—

---

१. 'वेदवाणी' वर्ष १६, अंक १२, पृष्ठ ६७६, व ६८२

२. "हनुमान्‌जी बन्दर थे या मनुष्य ?" पृष्ठ १ (सन् १६७१ ई० में श्री दुर्गाप्रसाद 'सनातनी' १०२ तालाब नवलराय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

३. "शुद्ध हनुमच्चरित" पृष्ठ २६ (संवत् २०२८ वि० में सत्य प्रकाशन, वृन्दावन मार्ग, मथुरा द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति)।

"वानरः पुं०-स्त्री० (वा विकल्पिनो नरः; यद्वा वाने वने भवं फलादिकं रातीति। वान+रा+क) पशुविशेषः, कपिः, प्लवङ्गः, प्लवगः, शाखामृगः, वलीमुखः; मर्कट, कीशः, वनौकाः, मर्कः, प्लवः, प्रवङ्गः, प्रवगः, प्लवङ्गमः, प्रवङ्गमः, गोलाङ्गूलः, कपित्थास्यः, दधिशोणः, हरिः, तरुमृगः, नगाटनः, झम्पी, झम्पारुः, कलिप्रियः, किखिः, शालावृकः…।"[1]

पं० वामन शिवराम आप्टे—

"वानरः (वानं वनसंबंधि फलादिकं राति गृह्णति—रा+क, वा विकल्पेन नरो वा) बन्दर, लंगूर।…"[2]

चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद शर्मा, एम० आर० ए० एस० व पं० तारिणीश झा व्याकरण-वेदान्ताचार्यः—

"वानर—(पुं०) [वा विकल्पितो नरः अथवा वानं वने भवं फलादिकं राति, वान √रा+क) बन्दर।…"[3]

कपिप्लवंगप्लवगशाखामृगवलीमुखाः ।
मर्कटो वानरः कीशो वनौका अथ भल्लुके ।।३।।

[अमरकोशः, द्वितीय काण्डे, सिंहादिवर्गः ५]

पं० विश्वनाथ झा व्याकरणाचार्यः—

"कपिः(कम्पते इति इन् नलोपश्च), प्लवङ्गः(प्लवनम्, अप्, प्लवेन गच्छतीति-खच् मुम्, डित्वाट्टिलोपः, डित्वाभावे प्लवङ्गमः इत्यपि पाठः), प्लवगः (प्लवेन गच्छति इति डः), शाखामृगः (शाखाचारी मृगः शाकपार्थिवादित्वात् समासः), वलीमुखः (वलीयुक्तो मुखः), मर्कट (मर्कति=गृह्णाति इति अटन्), वानरः (वने

---

१. हलायुधकोषः (अभिधान रत्नमाला), पृष्ठ ६००-६०१ [सन् १९६७ ई० में हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]

२. "संस्कृत-हिन्दीकोश" पृष्ठ ९१७ [सन् १९६६ ई० में संस्कृत-अंग्रेजी कोश का आर्य भाषा में अनूदित सर्वश्री मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित]

३. "संस्कृत-शब्दार्थ कौस्तुभ" पृष्ठ १०३८ [सन् १९७५ ई० में रामनारायणलाल बेणीप्रसाद, प्रयाग २११००२ द्वारा प्रकाशित, पञ्चम संस्करण]

भवम् अण् वानम्=फलादि, वानं रातीति कः), कीशः (कस्य=वायोः अपत्यम्, किः=हनूमान्, ईशः=स्वामी यस्य) वनौकाः (वनम् ओकः=गृहं यस्य) में ६ पुं० नाम वानर के हैं।"[1]

"कपिर्ना सिह्लके शाखामृगे च मधुसूदने। इति विश्वमेदिन्यौ।"

"प्लवंगश्च मण्डूके तथा शाखामृगेऽपि च। इति मेदिनी। प्लवगः कपिभेकयोः। अर्कसूते। इति हैमः।"[2]

वनवासी—"भैक्षमाहरेत्…वनवासिषु।" —[मनुस्मृति ६।२७]

अर्थात्—"वनवासी गृहस्थ द्विजों से भिक्षा माँगे।"

वनचारी—

ऋषयश्च महात्मनः सिद्धविद्याधरोरगाः।
चारणाश्च सुतान् वीरान् ससृजुर्वनचारिणः॥६॥

[वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १४]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"महात्मा, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, नाग और चारणों ने भी वन में विचरनेवाले वानर-भालुओं के रूप में वीर पुत्रों को जन्म दिया।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि वानर-भालू आदि ऋषियों की सन्तान हैं।

'वनचारी' का अर्थ है "वन में रहनेवाला", वन में विचरण करनेवाला और वन के फलादि खानेवाला।

जिस भाव से उनको वनचारी कहा गया है उसी भाव से 'वानर' कहा जाता है।

अतः 'वानर' और 'वनचारी' एक ही हैं।

"वानर—वानसम्बन्धि फलादिकं राति गृह्णाति"

—[शब्दस्तोममहानिधिकोष]

---

१. अमरकोषः 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतः (द्वितीयं काण्डम्), पृष्ठ ६४ [सन् १९७६ ई० में मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]
२. वही, पाद-टिप्पणी पृष्ठ ६४
३. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, पृष्ठ ६५

जो वन के कन्दमूल फल खाते हैं वे वानर हैं।

'वा—गति गन्धनयोः="वा धातु गति और गन्धन अर्थ में है और गति के तीन अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति। जो गतिशील नर हैं, गमनशील (तीव्र गति से चलनेवाले, दौड़नेवाले) हैं और जो प्राप्ति करने में सफल मनुष्य हैं वे 'वानर' कहे जा सकते हैं।

रामायण में वानरों के लिए इन शब्दों का प्रयोग वानर शब्द के स्थान में उससे मिलता-जुलता-सा होने के कारण श्लोकों में जहाँ 'वानर' शब्द से छन्दो-भङ्ग होते देखा वहाँ कर लिया गया। वैसे 'प्लव' के अर्थ "शब्दस्तोममहानिधि" में मेंढक, वानर, श्वपच, जलकाक प्रवण, (चतुष्पथ=चौराहा, नीचा स्थान, उदर, नम्र) आयत=दीर्घ, खिंचा हुआ (आकृष्ट), अति यत्नशाली, स्निग्ध, कारण्डव पक्षी, शब्द, शत्रु, जलभेद, जलकुक्कुट, जलचर पक्षी सारसादि दिये गये हैं। देखिए—प्लव, प्रवण और आयत शब्दों के अर्थ।

'प्लवग' का अर्थ—'प्लवनसन् गच्छति' पानी पर तैरता हुआ-सा चलना दिया है। यही अर्थ 'प्लवङ्गम' का है।

वानर लोग बहुत फुर्तीले, चुस्त, दौड़ने-भागने, शीघ्रता से कार्य करने में अति प्रवीण होते थे। कवि ने अपने काव्य में उनको 'प्लवङ्गम' कह दिया तो क्या आश्चर्य है?

शूरवीर मनुष्य को सिंह, सिंहपुरुष, नृसिंह, व्याघ्रपुंगव, पुरुषर्षभ आदि कहा जाता है। क्षत्रियों की वीरता के कारण उनके नामों के अन्त में 'सिंह' उपाधि है।

श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को 'भरतर्षभ' कहा है। ऋषभ बैल होता है तो इसका अर्थ 'भरतकुलवालों का बैल' होना चाहिए, पर 'भरतकुल का वीर बलवान् व्यक्ति' ही सही अर्थ है।

'कपि' शब्द के अर्थ="कपिः, पु० [कम्पते यः सदा। कपि चलने 'कुण्डित-कम्प्योर्न लोपश्च' इति इ प्रत्ययः] वानरः···वराहः, रक्तचन्दनं, पिङ्गलम्··· [कं जलं पिबति किरणैः इति कपिः सूर्यः'—इत्युपनिषद्व्याख्यां रामानुजाचार्याः]"[1]

'कपि' का अर्थ 'सूर्य' होने से 'सूर्यवंशी' क्षत्रिय कपिवंशी भी कहला सकते हैं।

'बृहदारण्यकोपनिषद्' अध्याय २, ब्राह्मण ६, वाक्य ३ "कैशोर्यं काप्यः"—

---

१. "हलायुधकोशः" पृष्ठ २००

कपिवंशी कैशोर्य ऋषि का उल्लेख है।

बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ३, ब्राह्मण ३, कंडिका १ में व अध्याय ३, ब्राह्मण ७, कंडिका १ में "पतञ्जलस्य काप्यस्य"=पतंजल कपिवंशी का उल्लेख है। कपिवंशी लोगों को कहीं 'कापेय' तथा 'काप्य' कहा गया होगा और कहीं कपि।

वानरों की उत्पत्ति—

वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम्।
सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः ॥१०॥
बृहस्पतिस्त्वजनयत् तारं नाम महाकपिम्।
सर्ववानरमुख्यानां बुद्धिमन्तमनुत्तमम् ॥११॥
धनदस्य सुतः श्रीमान् वानरो गन्धमादनः।
विश्वकर्मा त्वजनयन्नलं नाम महाकपिम् ॥१२॥
पावकस्य सुतः श्रीमान् नीलोऽग्निसदृशप्रभः।
तेजसा यशसा वीर्यादत्यरिच्यत वीर्यवान् ॥१३॥
रूपद्रविणसम्पन्नावश्विनौ रूपसम्मतौ।
मैन्दं च द्विविदं चैव जनयामासतुः स्वयम् ॥१४॥
वरुणो जनयामास सुषेणं नाम वानरम्।
शरभं जनयामास पर्जन्यस्तु महाबलः ॥१५॥
मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनूमान् नाम वानरः।
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे ॥१६॥
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि।
ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः ॥१७॥

—[वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १७]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' कृत भा० टी०—

"देवराज इन्द्र ने वानरराज बाली को पुत्ररूप में उत्पन्न किया, जो महेन्द्र पर्वत के समान विशालकाय और बलिष्ठ था। तपनेवालों में श्रेष्ठ भगवान् सूर्य ने सुग्रीव को जन्म दिया ॥१०॥ बृहस्पति ने तार नामक महाकाय वानर को उत्पन्न किया, जो समस्त वानर सरदारों में परम बुद्धिमान् और श्रेष्ठ था ॥११॥ तेजस्वी वानर गन्धमादन कुबेर का पुत्र था। विश्वकर्मा ने नल नामक महान्

वानर को जन्म दिया ॥१२॥ अग्नि के समान तेजस्वी श्रीमान् नील साक्षात् अग्निदेव का ही पुत्र था। वह पराक्रमी वानर तेज, यश और बलवीर्य में सबसे बढ़कर था ॥१३॥ रूप-वैभव से सम्पन्न, सुन्दर रूपवाले दोनों अश्विनीकुमारों ने स्वयं ही मैन्द और द्विविद को जन्म दिया था ॥१४॥ वरुण ने सुषेण नामक वानर को उत्पन्न किया और महाबली पर्जन्य ने शरभ को जन्म दिया ॥१५॥ हनूमान् नामवाले ऐश्वर्यशाली वानर वायुदेवता के औरस पुत्र थे। उनका शरीर वज्र के समान सुदृढ़ था। वे तेज चलने में गरुड़ के समान थे। सभी श्रेष्ठ वानरों में वे सबसे अधिक बुद्धिमान् और बलवान् थे। इस प्रकार कई हजार वानरों की उत्पत्ति हुई। वे सभी रावण का वध करने के लिए उद्यत रहते थे ॥१७॥"[1]

क्या वानरों की माताएँ बन्दरियाँ थीं ?

इन्द्र, सूर्य, बृहस्पति, कुबेर, विश्वकर्मा, अग्नि, अश्विनीकुमार, वरुण, पर्जन्य व वायु, ये सब विशिष्ट पुरुष थे, सबकी ही प्रायः पत्नियाँ थीं, सब ही के पुत्र थे। इनमें कई राजा थे, कई ऋषि थे। इन नामों और पदोंवाले व्यक्ति सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक के इतिहासों में मिलते हैं। पशुओं आदि से मैथुन करना धर्मशास्त्र के अनुसार भी पाप है और राजनियमों में दण्डयोग्य अपराध है। वर्तमान विधानों के अनुसार भी पशुओं से मैथुन करनेवालों के लिए दण्ड नियत है, अतः ऋषियों ने पशुओं से मैथुन करके यह पापकर्म और अपराध कदापि नहीं किया होगा। इससे स्पष्ट है कि हनूमान्जी आदि की माताएँ बन्दरियाँ नहीं हो सकती हैं।

"समानप्रसवात्मिका जातिः" ॥७१॥

—[न्यायदर्शन अ० २, आह्निक २]

पं० तुलसीराम स्वामी—

"द्रव्यों में आपस का भेद होते हुए भी जिसमें समान प्रसवपना पाया जाता है वह जाति है।"[2]

---

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (सचित्र, हिन्दी भाषान्तर सहित) प्रथम भाग, पृष्ठ ६५-६६

२. "न्यायदर्शन भाषा भाष्य" पृष्ठ ६४ [स्वामी प्रेस, मेरठ द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, सप्तम बार]

अर्थात् एक जाति के नर व मादा मिलकर उसी जाति की सन्तान उत्पन्न करते हैं। मनुष्य व पशु मिलकर सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते हैं; यह सृष्टिक्रम के विरुद्ध है।

"ऋक्षीषु च तथा जाता वानराः किन्नरीषु च।
देवा महर्षिगन्धर्वास्ताक्ष्र्ययक्षा यशस्विनः ॥२१॥
नागाः किंपुरुषाश्चैव सिद्धविद्याधरोरगाः।
बहवो जनयामासुर्हृष्टास्तत्र सहस्रशः ॥२७॥
चारणाश्च सुतान् वीरान् ससृजुर्वनचारिणः।
वानरान् सुमहाकायान् सर्वान् वै वनचारिणः ॥२३॥
अप्सरस्सु च मुख्यासु तथा विद्याधरीषु च।
नागकन्यासु च तथा गन्धर्वीणां तनूषु च।
कामरूपबलोपेता यथाकामविचारिणः ॥२४॥"

—[वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १७]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"कुछ वानर रीछ जाति की माताओं से तथा कुछ किन्नरियों से उत्पन्न हुए। देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड़, यशस्वी यक्ष, नाग, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर तथा सर्प जाति के बहुसंख्यक व्यक्तियों ने अत्यन्त हर्ष में भरकर सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये ॥२१-२२॥ देवताओं का गुण गानेवाले वनवासी चारणों ने बहुत-से वीर, विशालकाय वानरपुत्र उत्पन्न किये। वे सब जंगली फल-मूल खानेवाले थे ॥२३॥ मुख्य-मुख्य अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं तथा गन्धर्व-पत्नियों के गर्भ से भी इच्छानुसार रूप और बल से युक्त तथा स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करने में समर्थ वानरपुत्र उत्पन्न हुए ॥२४॥"[1]

उपर्युक्त जो नाम लिये गये हैं ये सब मनुष्यवर्ग के नाम हैं, बन्दर-बन्दरियों के नहीं हैं।

अतः वानर बर्बर नहीं वरन् ऋषि-मुनियों की सन्तान हैं।

वानर लोग अपने-अपने पिताओं के रूपवाले ही थे—

"यस्य देवस्य यद्रूपं वेषो यश्च पराक्रमः ॥१९॥

---

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, पृष्ठ ६६

प्रजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक् पृथक् ।
गोलाङ्गूलेषु चोत्पन्नाः किंचिदुन्नतविक्रमाः ॥२०॥

—[वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १७]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

जिस देवता का जैसा रूप, वेष और पराक्रम था, उससे उसी के समान पृथक्-पृथक् पुत्र उत्पन्न हुआ। लंगूरों में जो देवता उत्पन्न हुए, वे देवावस्था की अपेक्षा भी कुछ अधिक पराक्रमी थे[1] ॥१९-२०॥

वानरों का परिधान—

"सुग्रीवोऽप्यनदद् घोरं बालिनो ह्वानकारणात् ।
गाढं परिहितो वेगान्नर्दन्भिन्दन्निवाम्बरम्" ॥१५॥

[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १२]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"सुग्रीव ने लंगोट से अपनी कमर खूब कस ली और बाली को बुलाने के लिए भयंकर गर्जना की। वेगपूर्वक किये हुए उस सिंहनाद से मानो वे आकाश को फाड़े डालते थे ॥१५॥[2]

कुछ लोग 'कटिवस्त्र' का अर्थ (फेंटा) भी करते हैं।

यहाँ सुग्रीव को कमर में 'लंगोट' या कटिवस्त्र कसकर बाँधे हुए बतलाया गया है।

राजस्थान के क्षत्रिय अब भी कमर में 'पटुका' (कमर में बाँधने का वस्त्र-विशेष, कमरबन्द, कमरपेच) बाँधते हैं। सिपाहियों की कमर में पेटी आदि सर्वत्र ही बाँधी जाती है। कमर कसकर खड़े हो जाने की लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है। सुग्रीव ने भी बाली से युद्ध करने के लिए कपड़े से कमर कसी हुई थी।

ब्रह्मचारी पं० अखिलानन्द जी, झरिया ने पूर्वोक्त स्थल का अर्थ यह किया है—"बाली को बुलाने के लिए कमर कसकर सुग्रीव ने भयंकर घोर गर्जना करना

---

१. वही, पृष्ठ ६६
२. वही, पृष्ठ ७०५

आरम्भ कर दिया जिसकी ध्वनि से आकाश गुञ्जायमान हो गया।"[1]

"तं स दृष्ट्वा महाबाहुः सुग्रीवं पर्यवस्थितम्।
गाढं परिदधे वासो वाली परमकोपनः" ॥१६॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १६]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—

"इतने ही में श्रीमान् वाली ने सुवर्ण के समान पिंगल वर्णवाले सुग्रीव को देखा जो लंगोट बांधकर युद्ध के लिए उठकर खड़े थे और प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे थे।"[2]

बालब्रह्मचारी पं० अखिलानन्द जी, झरिया—

"विशाल भुजावाले वाली ने सुग्रीव को सब प्रकार से सन्नद्ध देखकर अत्यन्त क्रोध करते हुए अपने वस्त्रों को दृढ़ता के साथ बांधा।"[3]

वानर लोग अनेक वस्त्र पहनते थे—

"एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः।
तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः" ॥२६॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १०]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"ऐसा कहकर वानरराज वाली ने निर्भयतापूर्वक मुझे घर से निकाल दिया। उस समय मेरे शरीर पर एक ही वस्त्र रह गया था।"[4]

यहां 'वस्त्रेणैकेन' एक वस्त्र से निकाला जाना यह सूचित करता है कि वानर लोग धोती के अतिरिक्त अंगरखा, दुपट्टा आदि अनेक वस्त्र पहनते थे।

सुग्रीव के गीले वस्त्र—

वाली की अन्त्येष्टिक्रिया (दाहसंस्कार) करने के बाद सुग्रीव गीले वस्त्र

---

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, वेदवाणी वर्ष १५, अंक ११, पृष्ठ ८०४

२. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, पृष्ठ ७१५

३. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड; 'वेदवाणी' वर्ष १५, अंक ११, पृष्ठ ८१५

४. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, पृष्ठ ६९७

धारण किये हुए था और उसने सचैल स्नान किया था ऐसा कहा गया है—

"ततः शोकाभिसंतप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवाससम् ।
शाखामृगमहामात्राः परिवार्योपतस्थिरे" ॥१॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धा काण्ड, सर्ग २६]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"तदनन्तर वानर सेना के प्रधान-प्रधान वीर (हनूमान् आदि) भीगे वस्त्रवाले शोक-संतप्त सुग्रीव को चारों ओर से घेरकर उन्हें साथ लिये अनायास ही महान् कर्म करनेवाले महाबाहु श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुए।"[1]

हनूमान्जी के श्वेत वस्त्र—

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा ।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम् ॥१॥

—[वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग ३२]

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—

"तब शाखा के भीतर छिपे हुए, विद्युत्पुञ्ज के समान् अत्यन्त पिङ्गल वर्ण-वाले और श्वेत वस्त्रधारी हनूमान्जी पर उनकी दृष्टि पड़ी ;"[2]

कुछ वन्दर वर्तमानकाल में भी वस्त्र धारण किये हुए देखे जाते हैं। वन्दर नचानेवालों के पास जो वन्दर होते हैं वे वस्त्र धारण किये हुए होते हैं। वास्तव में ये वन्दर स्वयं वस्त्र नहीं धारण करते वरन् उनके पालक बलपूर्वक धारण कराते हैं।

वानर लोग आभूषण पहनते थे, सोना व्यवहार में लाते थे—

सुग्रीव ने वाली के बल-पौरुष का वर्णन करते हुए श्री रामचन्द्रजी को दुन्दुभी दैत्य के साथ वाली के मल्लयुद्ध की कथा सुनाते हुए कहा—

तमेवमुक्त्वा संक्रुद्धो मालामुत्क्षिप्य काञ्चनीम् ।
पित्रा दत्तां महेन्द्रेण युद्धाय व्यवतिष्ठत ॥३९॥

—(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ११)

---

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, पृ० ७४३

२. वही, द्वितीय भाग, पृष्ठ ६४४

साहित्याचार्य पं० रामनारायण दत्त शास्त्री—

"उससे ऐसा कहकर पिता इन्द्र की दी हुई विजयदायिनी सुवर्णमाला को गले में डालकर वाली कुपित हो युद्ध के लिए खड़ा हो गया।"[१]

श्री रामचन्द्रजी सुग्रीव से कहते हैं कि—

"तवाह्वाननिमित्तं च वालिनो हेममालिनः॥१६॥
सुग्रीव कुरु तं शब्दं निष्पतेद् येन वानरः।"

—(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १४)

साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री राम—

"इसलिए सुग्रीव ! तुम सुवर्णमालाधारी वाली को बुलाने के लिए इस समय ऐसी गर्जना करो, जिससे तुम्हारा सामना करने के लिए वह वानर नगर से बाहर निकल आये।"[२]

वाली सोने की माला धारण करता था यह यहाँ स्पष्ट है। आगे किष्किन्धा-काण्ड, सर्ग १६ श्लोक १८ में **"वालिनं हेममालिनम्"** आया है जिसका अर्थ है—"सुवर्ण मालाधारी वाली।"

सर्ग १७ श्लोक २ में वाली के लिए आया है—**'कांचनभूषणः**—तपाये हुए सोने के आभूषण।'

सर्ग १७ श्लोक ६ में वाली के लिए—**"मालया वीरो हेमया हरियूथपः"** उस सुवर्णमाला से विभूषित हुआ वानरयूथपति।"···

मरते हुए वाली ने सुग्रीव से कहा—**"इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव कांचनीम्"**—(किष्किन्धाकां०, सर्ग २२ श्लोक १६) हे सुग्रीव ! मेरी यह सोने की दिव्य माला तुम धारण करलो।"

वानरों के सोने व चांदी के पलंग—

हैमराजतपर्यंकैर्बहुभिश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्र समावृतम्॥२०॥

—(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड सर्ग ३३)

---

१. वही, प्रथम भाग, पृष्ठ ७०१

२. वही, पृष्ठ ७११.

अर्थ—उसमें जहां-तहां चांदी और सोने के बहुत-से पलंग तथा अनेकानेक श्रेष्ठ आसन रखे हुए थे और उन सबपर बहुमूल्य बिछौने बिछे थे। उन सबसे वह अन्तःपुर सुसज्जित दिखाई देता था।"

सुग्रीव के भूषण—

श्री रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को अपने बल और अपनी धनुर्विद्या का परिचय देने के लिए एक ही बाण से सात तालवृक्षों को काट कर गिरा दिया तब—

स मूर्ध्ना न्यपतद् भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः।
सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः॥६॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १२]

अर्थ—"साथ ही उन्हें मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नता हुई। सुग्रीव ने हाथ जोड़कर धरती पर माथा टेक दिया और श्री रघुनाथजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम के लिए झुकते समय उनके कण्ठहारादि भूषण लटकते हुए दिखाई देते थे।"[1]

सुग्रीव व बाली जब गुत्थमगुत्था हो गये और बाली का कठोर मुक्का न सहकर जब सुग्रीव भागा और श्रीरामचन्द्रजी से उसने कहा कि आप तो कहते थे कि मैं बाली को मारूँगा, आपने उसे क्यों नहीं मारा और मुझको उससे पिटवा दिया। इसपर श्रीरामचन्द्र जी ने बाली को न मारने का कारण यह बताया—

"अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च।
त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम्"॥३०॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १२]

अर्थ—"सुग्रीव! वेशभूषा, कद और चाल ढाल में तुम और बाली दोनों एक-दूसरे से मिलते-जुलते हो।"

यहाँ 'भूषणों=अलंकारों' की चर्चा है।

तारा के आभूषण—

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी,
प्रलम्बकाञ्ची गुणहेमसूत्रा।

---

१. वाल्मीकीय रामायण के उपर्युक्त उद्धरण गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित पंडित राम नारायण दत्त शास्त्री के सन्दर्भ से—(लेखक)।

सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं,
जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥३८॥

[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३३]

अर्थ—"सुग्रीव के ऐसा कहने पर शुभलक्षणा तारा लक्ष्मण के पास गई। उसका पतला शरीर स्वाभाविक संकोच एवं विनय से झुका हुआ था। उसके नेत्र मद से चञ्चल हो रहे थे, पैर लड़खड़ा रहे थे और उसकी करधनी के सुवर्णमय सूत्र लटक रहे थे।"

सुग्रीव के दिव्य आभूषण—

(श्री लक्ष्मणजी ने सुग्रीव को देखा)—

दिव्याभरणचित्राङ्गं दिव्यरूपं यशस्विनम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं महेन्द्रमिव दुर्जयम् ॥६४॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग ३३]

अर्थ—"उस समय दिव्य आभूषणों के कारण उनके शरीर की विचित्र शोभा हो रही थी। दिव्य रूपधारी यशस्वी सुग्रीव दिव्य मालाएँ और दिव्य वस्त्र धारण करके दुर्गम वीर देवराज इन्द्र के समान दिखाई दे रहे थे।"

सुग्रीव के अन्तःपुर की महिलाओं के आभूषण—

श्री लक्ष्मणजी ने सुग्रीव के भवन में स्त्रियों को देखा—

बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः।
स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥२२॥
दृष्ट्वाभिजनसम्पन्नास्तत्र माल्यकृतस्रजः।
वरमाल्यकृतव्यग्रा भूषणोत्तमभूषिताः ॥२३॥
कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा।
स निशम्य ततः श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥२५॥
रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम्।
चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२६॥

[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड सर्ग ३३]

अर्थ—"महाबली लक्ष्मण ने सुग्रीव के उस अन्तपुर में अनेक रूप-रंग की बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं, जो रूप और यौवन के गर्व से भरी हुई थीं ॥२२॥ वे सब-की-सब उत्तम कुल में उत्पन्न हुई थीं। फूलों के गजरों से अलंकृत थीं,

उत्तम पुष्पहारों के निर्माण में लगी हुई थीं और सुन्दर आभूषणों से विभूषित थीं ॥२३॥ नूपुरों की झनकार और करधनी की खनखनाहट सुनकर श्रीमान् सुमित्राकुमार लज्जित हो गये (परायी स्त्रियों पर दृष्टि पड़ने के कारण उन्हें स्वभावतः संकोच हुआ) ॥२५॥ तत्पश्चात् पुनः आभूषणों की झनकार सुनकर लक्ष्मण रोष के आवेग से और भी कुपित हो उठे और उन्होंने अपने धनुष पर टंकार दी, जिसकी ध्वनि से समस्त दिशाएँ गूंज उठीं।" ॥२६॥

सुग्रीव के सेवक—

नातृप्तान् नाति चाव्यग्रान् नानुदात्तपरिच्छदान्।
सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः ॥२४॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग ३३]

अर्थ—"उन सबको देखकर लक्ष्मण ने सुग्रीव के सेवकों पर भी दृष्टिपात किया, जो अतृप्त या असन्तुष्ट नहीं थे। स्वामी के कार्य सिद्ध करने के लिए अत्यन्त फुर्ती की भी उनमें कमी नहीं थी तथा उनके वस्त्र और आभूषण भी निम्न श्रेणी के नहीं थे" ॥२४॥

वानर राज्य में मन्त्रिमण्डल—

श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी को ऋष्यमूकपर्वत की ओर आते देखकर सुग्रीव, उसके अनुचरों और उसके मन्त्रिमण्डल को बहुत चिन्ता हो गई, क्योंकि वे सब बाली से बहुत भयभीत थे, अतः लिखा है—

ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ ॥५॥
प्रेतौ वनमिदं दुर्गं बालिप्रणिहितौ ध्रुवम्।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥६॥
ततः सुग्रीवसचिवा दृष्ट्वा परमधन्विनौ।
जग्मुर्गिरितटात् तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥७॥
ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रे समाहिताः।
संगम्य कपिमुख्येन सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥१२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग २]

अर्थ—"वानरराज सुग्रीव के हृदय में बड़ा उद्वेग हो गया था। वे श्रीराम और लक्ष्मण की ओर देखते हुए अपने मन्त्रियों से इस प्रकार बोले ॥५॥ निश्चय

ही ये दोनों वीर बाली के भेजे हुए ही इस दुर्गम वन में विचरते हुए यहाँ आये हैं। इन्होंने छल से चीरवस्त्र धारण कर लिये हैं, जिससे हम इन्हें पहचान न सकें ॥६॥ उधर सुग्रीव के सहायक दूसरे-दूसरे वानरों ने जब उन महाधनुर्धर श्रीराम और लक्ष्मण को देखा, तब वे उस पर्वततट से भागकर दूसरे उत्तम शिखर पर जा पहुँचे ॥७॥ इस प्रकार सुग्रीव के सभी सचिव पर्वतराज ऋष्यमूक पर जा पहुँचे और एकाग्रचित्त हो उस वानरराज से मिलकर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥१२॥

मन्त्रिमण्डल में विचार-विमर्श—

यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं विद्रुतो हरिपुङ्गव।
तं क्रूरदर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि बालिनम् ॥१५॥
यस्मात् तव भयं सौम्य पूर्वजात् पापकर्मणः।
स नेह वालीदुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम् ॥१६॥
सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥१९॥
दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ।
कस्य न स्याद् भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥२०॥
वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥२१॥
अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥२२॥
तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम।
इङ्गितानां प्रकारैश्च कपि व्याभाषणेन च ॥२४॥
शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम।
व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः ॥२७॥
इत्येवं कपिराजेन संदिष्टो मारुतात्मजः।
चकार गमने बुद्धिं यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग २]

अर्थ—"आप सब लोग वाली के कारण होनेवाली इस भारी घबराहट को छोड़ दीजिए! यह मलयनामक श्रेष्ठ पर्वत है। यहाँ वाली से कोई भय नहीं

है ॥१५॥ सौम्य ! आपको अपने जिस पापाचारी बड़े भाई से भय प्राप्त हुआ है, वह दुरात्मा बाली यहाँ नहीं आ सकता; अतः मुझे आपके भय का कोई कारण नहीं दिखाई देता ॥१६॥ हनूमान्‌जी के मुख से निकले हुए इन सभी श्रेष्ठ वचनों को सुनकर सुग्रीव ने उनसे बहुत ही उत्तम बात कही ॥१९॥ इन दोनों वीरों की भुजाएँ लम्बी और नेत्र बड़े-बड़े हैं। ये धनुष, बाण और तलवार धारण किये देवकुमारों के समान शोभा पा रहे हैं। इन दोनों को देखकर किसके मन में भय का संचार न होगा ॥२०॥ मेरे मन में सन्देह है कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष बाली के ही भेजे हुए हैं; क्योंकि राजाओं के बहुत-से मित्र होते हैं, अतः उनपर विश्वास करना उचित नहीं है ॥२१॥ प्राणिमात्र को छद्मवेष में विचरनेवाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि वे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेते हैं परन्तु स्वयं किसी का विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषों पर ही प्रहार कर बैठते हैं ॥२२॥ अतः कपिश्रेष्ठ ! तुम भी एक साधारण पुरुष की भाँति यहाँ से जाओ और उनकी चेष्टाओं से, रूप से तथा बातचीत के तौर-तरीकों से उन दोनों का यथार्थ परिचय प्राप्त करो ॥२४॥ यदि उनका हृदय शुद्ध जान पड़े, तो भी तरह-तरह की बातों और आकृति के द्वारा यह जानने की विशेष चेष्टा करनी चाहिए कि ये दोनों कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं आये हैं ॥२७॥ वानरराज सुग्रीव के इस प्रकार आदेश देने पर पवनकुमार हनूमान्‌जी ने उस स्थान पर जाने का विचार किया, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान थे ॥२८॥

हनूमान्‌जी ने जब बहुत अच्छी तरह राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त कर लिया और कुछ भी सन्देह शेष न रहा, तब श्रीरामचन्द्रजी को कहा कि--

"युवाभ्यां सह धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति ।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्" ॥२२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग ३]

अर्थ—"धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों से मित्रता करना चाहते हैं। मुझे आप लोग उन्हीं का मन्त्री समझें। मैं वायुदेवता का वानरजातीय पुत्र हूँ।" ॥२२॥

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥२५॥

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥२६॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग ३]

अर्थ—"उनकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। वे अपनी बगल में खड़े हुए छोटे भाई लक्ष्मण ने इस प्रकार कहने लगे॥ २५॥ सुमित्रानन्दन! ये महामनस्वी वानरराज सुग्रीव के सचिव हैं और उन्हीं के हित की इच्छा से यहाँ मेरे पास आये हैं" ॥२६॥

सुग्रीव ने अपनी व्यथा सुनाते हुए श्रीरामचन्द्रजी को बतलाया कि मेरे अग्रज बाली ने एक दैत्य को मारने के लिए उसके पीछे एक पहाड़ी गुफा में प्रवेश किया। मैंने उसकी वहाँ बहुत प्रतीक्षा की, भ्राता तो वापस न आये, रुधिर की धार बहती हुई बाहर आई तो मैंने समझा कि मेरे भ्राता को उस दैत्य ने मार दिया। ऐसा समझकर मैं उस गुफा के द्वार पर एक बड़ा पत्थर लगाकर अपने नगर में आ गया।

"गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम् ॥२०॥
ततोऽहं तैः समागम्य संमतै रभिषेचितः" ॥२१॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग ६]

अर्थ—"यद्यपि मैं इस यथार्थ बात को छिपा रहा था, तथापि मन्त्रियों ने यत्न करके सुन लिया ॥२०॥ तब उन सबने मिलकर मुझे राज्य पर अभिषिक्त कर दिया" ॥२१॥

बाली के जीवित वापस आने पर सुग्रीव ने उससे कहा कि—

"तस्माद्देशादपाक्रम्य किष्किन्धां प्राविशं पुनः।
विषादात्त्विह मां दृष्ट्वा पौरैर्मन्त्रिभिरेव च ॥६॥
अभिषिक्तो न कामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि।
त्वमेव राजामानार्हः सदा चाहं यथापुरम् ॥७॥
बलादस्मि समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥१०॥
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया" ॥११॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग १०]

अर्थ—"मैं उस स्थान से हट गया और पुनः किष्किन्धापुरी में चला आया। यहाँ विषादपूर्वक मुझे अकेला लौटा देख पुरवासियों और मन्त्रियों ने ही इस

राज्य पर मेरा अभिषेक कर दिया ॥६॥ मैंने स्वेच्छा से इस राज्य को नहीं ग्रहण किया है। अतः अज्ञानवश होनेवाले मेरे इस अपराध को आप क्षमा करें ॥६½॥ आप ही यहाँ के सम्माननीय राजा हैं और मैं सदा आपका पूर्ववत् सेवक हूँ ॥७॥ मन्त्रियों तथा पुरवासियों ने मिलकर जबर्दस्ती मुझे इस राज्य पर बिठाया है ॥१०॥ यह भी इसलिए कि राजा से रहित राज्य देखकर कोई शत्रु इसे जीतने की इच्छा से आक्रमण न कर बैठे" ॥११॥

मेरे ऐसा कहने पर भी बाली ने—

"प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव संमतान् ।१२॥
मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम्" ॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग १०]

अर्थ—"तत्पश्चात् उसने प्रजाजनों और सम्मान्य मन्त्रियों को बुलाया तथा सुहृदों के बीच में मेरे प्रति अत्यन्त निन्दित वचन कहा" ॥१२½॥

इन उपर्युक्त प्रमाणों से वानरों की राज्य-व्यवस्था का पता चलता है कि उनके राज्य में विधिवत् मन्त्रिमण्डल होते थे और मन्त्रियों द्वारा विचार-विमर्श किये जाते थे।

वानरों के अनुचर (सेवक) भी थे—

नातृप्तान्नापि च व्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् ।
सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः ॥२४॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग ३३]

अर्थ—"उन सबको देखकर लक्ष्मण ने सुग्रीव के सेवकों पर भी दृष्टिपात किया, जो अतृप्त या असन्तुष्ट नहीं थे। स्वामी के कार्य सिद्ध करने के लिए अत्यन्त फुर्ती की भी उनमें कमी नहीं थी तथा उनके वस्त्र और आभूषण भी निम्न श्रेणी के नहीं थे" ॥२४॥

वानरों के गुप्तचर विभाग :

तारा ने बाली को कहा कि तुम सुग्रीव से युद्ध करने के लिए इस समय मत जाओ, इस समय सुग्रीव अकेला नहीं है—

"अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः ।
प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥१६॥

अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ॥१७॥
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।
स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि॥१८॥
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परागतिः" ॥१९॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग १५]

अर्थ—"एक दिन कुमार अङ्गद वन में गये थे। वहाँ गुप्तचरों ने उन्हें एक समाचार बताया, जो उन्होंने यहाँ आकर मुझसे भी कहा था॥१६॥ वह समाचार इस प्रकार है—अयोध्या-नरेश के दो शूरवीर पुत्र, जिन्हें युद्ध में जीतना अत्यन्त कठिन है, जिनका जन्म इक्ष्वाकुकुल में हुआ है तथा जो श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं, यहाँ वन में आये हुए हैं॥१७॥ वे दोनों दुर्जय हैं और सुग्रीव का प्रिय करने के लिए उनके पास पहुँच गये हैं। उन दोनों में से जो आपके भाई के युद्धकर्म में सहायक बताये गये हैं, वे श्रीराम शत्रुसेना का संहार करनेवाले तथा प्रलयकाल में प्रज्वलित हुई अग्नि के समान तेजस्वी हैं। वे साधु पुरुषों के आश्रय-दाता कल्पवृक्ष हैं और संकट में पड़े हुए प्राणियों के लिए सबसे बड़ा सहारा हैं" ॥१८-१९॥

बाली ने गुप्तचरों की सूचना से लाभ न उठाया यह तो उसकी भूल है, पर इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उस वानर राज्य में गुप्तचर होते थे जोकि जानने योग्य सब-कुछ जान लेते थे और अपने स्वामी को पूरा परिचय कराते थे।

वानर लोग वेदों और शास्त्रों के विद्वान् थे--

श्रीरामचन्द्रजी ने वानरों को कहा कि—

"सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभ॥१०॥
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम्" ॥१०½॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग २६]

अर्थ--"वानरश्रेष्ठ वीर सुग्रीव इस समृद्धिशालिनी दिव्य गुफा में प्रवेश करें और वहाँ शीघ्र ही इनका विधिपूर्वक राज्याभिषेक कर दिया जाए।"

जो लोग विधि नहीं जानते, वे विधि के साथ किसी भी कार्य को नहीं कर सकते हैं। विधि के जाननेवाले ही विधिपूर्वक कार्य कर सकते हैं, अतः स्पष्ट

है कि वानर लोग राज्याभिषेक की शास्त्रोक्त विधि को जानते थे, जैसा कि आगे और भी स्पष्ट है। यथा—

ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि।
रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ॥२९॥
ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम्।
मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥३०॥
ततो हेमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते।
प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते।
प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने ॥३१॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग २६]

अर्थ—"तदनन्तर उन सबने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नाना प्रकार के रत्न, वस्त्र और भक्ष्य पदार्थों से सन्तुष्ट करके वानरश्रेष्ठ सुग्रीव का विधिपूर्वक अभिषेक-कार्य आरम्भ किया ॥२९॥

मन्त्रवेत्ता पुरुषों ने वेदी पर अग्नि की स्थापना करके उसे प्रज्वलित किया और अग्निवेदी के चारों ओर कुश बिछाये। फिर अग्नि का संस्कार करके मन्त्र-पूत हविष्य के द्वारा प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी ॥३०॥ तत्पश्चात् रंग-बिरंगी पुष्पमालाओं से सुशोभित रमणीय अट्टालिका पर एक सोने का सिंहासन रक्खा गया और उसपर सुन्दर बिछौना बिछाकर उसके ऊपर सुग्रीव को पूर्वाभिमुख करके विधिवत् मन्त्रोच्चारण करते हुए बिठाया गया" ॥३१½॥

अन्य अनेक वानर भी बड़े-बड़े विद्वान् थे—

(अगस्त्यजी ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा)—

"एवेव चान्ये च महाकपीन्द्राः,
सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः।
सतारतारेयनलाः सरम्भा-
स्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टा" ॥४६॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग २६]

अर्थ—"श्रीराम ! वास्तव में ये तथा इन्हीं के समान दूसरे-दूसरे जो सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय (अङ्गद), नल तथा रम्भ आदि महाकपीश्वर हैं, इन सबकी सृष्टि देवताओं ने आपकी सहायता के लिए ही की है" ॥४६॥

सुग्रीव भी विद्वान् था—

"महानुभावस्य वचो निशम्य हरिर्नृपाणामधिपस्य तस्य ।
कृतं स मेने हरिवीरमुख्यस्तदा च कार्यं हृदयेन विद्वान्" ।।२५।।

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ७]

अर्थ—"राजाधिराज महाराज श्रीरघुनाथजी की बात सुनकर वानरवीरों के प्रधान विद्वान् सुग्रीव ने उस समय मन-ही-मन अपने कार्य को सिद्ध हुआ ही माना" ।।२५।।

बाली की पत्नी तारा भी विदुषी थी—

(बाली ने मरते समय कहा था)—

"तारया वाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञया हितम् ।
तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः" ।।४१।।

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १७]

अर्थ—"मेरी स्त्री तारा सर्वज्ञ है। उसने मुझे सत्य और हित की बात बताई थी। किन्तु मोहवश उसका उल्लंघन करके मैं काल के अधीन हो गया" ।।४१।।

बाली ने आगे और भी कहा कि—

"सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ।।१३।।
यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यं तन्मुक्तसंशयम् ।
नहि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते" ।।१४।।

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग २२]

अर्थ—"सुषेण की पुत्री यह तारा सूक्ष्मविषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पातों के चिह्नों को समझने में सर्वथा निपुण है ।।१३।। यह जिस कार्य को अच्छा बताये, उसे सन्देहरहित होकर करना। तारा की किसी भी सम्मति का परिणाम उलटा नहीं होता" ।।१४।।

श्रीरामचन्द्रजी ने भी तारा को पण्डिता कहा—

"जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिगतिम् ।
तस्माच्छुभं हि कर्त्तव्यं पण्डिते नेह लौकिकम्" ।।५।।

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग २१]

अर्थ—"देवि ! तुम विदुषी हो, अतः जानती ही हो कि प्राणियों के जन्म

श्रौर मृत्यु का कोई निश्चित समय नहीं है। इसलिए शुभ (परलोक के लिए सुखद) कर्म ही करना चाहिए। अधिक रोना-धोना आदि जो लौकिक कर्म (व्यवहार) है, उसे नहीं करना चाहिए" ॥५॥

तारा वेदज्ञा थी—

"ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥१२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १६]

अर्थ—"वह पति की विजय चाहती थी और उसे मन्त्र का भी ज्ञान था। इसलिए उसने वाली की मंगल कामना से **'स्वस्तिवाचन'** किया और शोक से मोहित हो वह अन्य स्त्रियों के साथ अन्तःपुर को चली गई" ॥१२॥

वानर शंख और भेरी भी बजाते थे—

"शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः।
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम्" ॥१३॥

—[वाल्मीकीय रामायण, सर्ग ३८]

अर्थ—"शङ्ख और भेरी की ध्वनि के साथ बन्दीजनों का अभिनन्दन सुनते हुए राजा सुग्रीव परम उत्तम राजलक्ष्मी को पाकर किष्किन्धापुरी से बाहर निकले" ॥१३½॥

वानर लोग मृदंग और वीणा आदि वाद्य बजाते तथा राग गाते थे—

"गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर।
नदतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह" ॥२७॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग २७]

अर्थ—"विजयी वीरों में श्रेष्ठ लक्ष्मण ! मृदङ्ग की मधुर ध्वनि के साथ गर्जते हुए वानरों के गीत और वाद्य का गम्भीर घोष यहां से सुनायी देता है" ॥२७॥

"प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम्।
तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम्" ॥२१॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३३]

अर्थ—"उसमें प्रवेश करते ही लक्ष्मण के कानों में संगीत की मीठी तान सुनायी पड़ी, जो वहां निरन्तर गूंज रही थी। वीणा के लय पर कोई कोमल कण्ठ से गा रहा था। प्रत्येक पद और अक्षर का उच्चारण सम, ताल का प्रदर्शन करते

हुए हो रहा था।"

'सम' शब्द पर पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' टिप्पणी लिखते हैं कि—"संगीत में वह स्थान जहाँ गाने-बजानेवालों का सिर या हाथ आप-से-आप हिल जाता है। वह स्थान ताल के अनुसार निश्चित होता है। जैसे तिताले में दूसरे ताल पर और चौताल में पहले ताल पर सम होता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न तालों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर सम होता है। वाद्यों का आरम्भ और गीतों तथा वाद्यों का अन्त उसी सम पर होता है। परन्तु गाने-बजाने के बीच-बीच में भी सम बराबर आता रहता है।"

बाली सन्ध्या करता था—

रावण बाली के साथ युद्ध करने के लिए किष्किन्धापुरी गया। बाली समुद्र-यात्रा करने के लिए गया हुआ था। उसने निश्चय किया था कि मैं चार समुद्रों पर सन्ध्या करूँगा। रावण के आने पर बाली के सम्बन्धियों ने रावण से कहा कि—

"राक्षसेन्द्र गतो बाली यस्ते प्रतिबलो भवेत्।
कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ॥५॥
अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम्।
बालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥१०॥
स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः।
पुष्पकं तत् समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥११॥
तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम्।
रावणो बालिनं दृष्ट्वा सन्ध्योपासनतत्परम्" ॥१२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३४]

अर्थ—"राक्षसराज! इस समय तो बाली बाहर गये हुए हैं। वे ही आपकी जोड़ के हो सकते हैं। दूसरा कौन वानर आपके सामने ठहर सकता है ॥५॥ अथवा यदि आपको मरने के लिए बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्र के तट पर चले जाइए। वहीं आपको पृथिवी पर स्थित हुए अग्निदेव के समान बाली का दर्शन होगा ॥१०॥ तब लोकों को रुलानेवाले रावण ने तारा को भला-बुरा कह-कर पुष्पकविमान पर आरूढ़ हो दक्षिण समुद्र की ओर प्रस्थान किया ॥११॥ वहाँ

रावण ने सुवर्णगिरि के समान ऊँचे वाली को सन्ध्योपासन करते हुए देखा। उनका मुख प्रभातकाल के सूर्य की भांति अरुणप्रभा से उद्भासित हो रहा था" ॥१२॥

वाली वेदमन्त्रों का जप कर रहा था—

"इत्येवं मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थित: ।
जपं वै नैगमान् मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव" ॥१८॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३४]

अर्थ—"ऐसा निश्चय करके वाली मौन हो रहे और वैदिक मन्त्रों का जप करते हुए गिरिराज सुमेरु की भांति खड़े रहे" ॥१८॥

"क्रमशः सागरान् सर्वान् सन्ध्याकालमवन्दत" ॥२७॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३४]

अर्थ—"उन महावेगशाली वानरराज ने क्रमशः सभी समुद्रों के तट पर पहुँचकर सन्ध्या-वन्दन किया।"

"तस्मिन् सन्ध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।
उत्तरं सागरं प्रायाद् वहमानो दशाननम्" ॥२६॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३४]

अर्थ—"वहाँ स्नान, सन्ध्योपासन और जप करके वे वानरवीर दशानन को लिये-दिये उत्तर समुद्र के तट पर जा पहुँचे" ॥२६॥

"उत्तरे सागरे सन्ध्यामुपासित्वा दशाननम् ।
वहमानोऽगमद् वाली पूर्वं वं स महोदधिम् ॥३१॥
तत्रापि सन्ध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ।
किष्किन्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥३२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३४]

अर्थ—"उत्तर सागर के तट पर सन्ध्योपासना करके दशानन का भार वहन करते हुए वाली पूर्व दिशावर्ती महासागर के किनारे गये ॥३१॥ वहाँ भी सन्ध्योपासना सम्पन्न करके वे इन्द्रपुत्र वानरराज वाली दशमुख रावण को बगल में दबाये फिर किष्किन्धापुरी के निकट आये" ॥३२॥

वानरों पर धर्मशास्त्रों के ही नियम लगते थे—

(रामचन्द्रजी ने वाली को मारने का कारण यह बताया)—

"तदेतत् कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ।।१८।।
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात् स्नुषायां पापकर्मकृत् ।।१९।।
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः।
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः" ।।२२।।

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १८]

अर्थ—"मैंने तुम्हें क्यों मारा है ? उसका कारण सुनो और समझो। तुम सनातन धर्म का त्याग करके अपने छोटे भाई की स्त्री से सहवास करते हो ।।१८।। इस महामना सुग्रीव के जीते-जी इसकी पत्नी रुमा का, जो तुम्हारी पुत्रवधू के समान है, कामवश उपभोग करते हो, अतः पापाचारी हो ।।१९।। मैं उत्तम कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हूँ; अतः मैं तुम्हारे पाप को क्षमा नहीं कर सकता। जो पुरुष अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाई की स्त्री के पास काम-बुद्धि से जाता है, उसका वध करना ही उसके लिए उपयुक्त दण्ड माना गया है" ।।२२½।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी "रामचरितमानस' के 'किष्किन्धाकाण्ड' में कहा है—

(वाली के श्रीरामचन्द्रजी के प्रति यह कहने पर कि)—

"मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ।।

इसपर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा था—

अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई ।।

अर्थ—"हे शठ, सुनो ! छोटे भाई की पत्नी, बहिन, पुत्रवधू, इनके साथ कन्या के समान आचरण करना चाहिए। इनको जो कोई कुदृष्टि से देखता है उसे मारने में कोई पाप नहीं होता है।"

विचारशील पाठक विचार कर सकते हैं कि यह उपर्युक्त कथन (सनातन धर्म) बन्दरों का है या मनुष्यों का है ?

वानरों के लिए धर्मशास्त्र का प्रमाण—

श्रीरामचन्द्रजी ने आगे वाली से कहा कि—

"शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुवर्तता।
श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चरित्रवत्सलौ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥३०॥
राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३१॥
शासनाद् वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्" ॥३२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १८]

अर्थ—"यदि राजा होकर तुम धर्म का अनुसरण करते तो तुम्हें भी वही काम करना पड़ता, जो मैंने किया है। मनु ने राजोचित सदाचार का प्रतिपादन करनेवाले दो श्लोक कहे हैं, जो स्मृतियों में सुने जाते हैं और जिन्हें धर्मपालन में कुशल पुरुषों ने सादर स्वीकार किया। उन्हीं के अनुसार इस समय यह मेरा बर्ताव हुआ (वे श्लोक इस प्रकार हैं—) ॥३०॥

मनुष्य पाप करके यदि राजा के दिये हुए दण्ड को भोग लेते हैं तो वे शुद्ध होकर पुण्यात्मा साधु पुरुषों की भाँति स्वर्गलोक में जाते हैं। (चोर आदि पापी जब राजा के सामने उपस्थित हों उस समय उन्हें) राजा दण्ड दे अथवा दया करके छोड़ दे। चोर आदि पापी पुरुष अपने पाप से मुक्त हो जाता है, किन्तु यदि राजा पापी को उचित दण्ड नहीं देता तो उसे स्वयं उसके पाप का फल भोगना पड़ता है" ॥३१-३२॥

मनुस्मृति ८।३१८, ८।३१६ में उपर्युक्त दोनों श्लोक किञ्चित् पाठान्तर के साथ पाये जाते हैं।

सीताजी—और सुग्रीव का मन्त्रिमण्डल—

सुग्रीव ने श्री रामचन्द्रजी को कहा कि—

"अनुमानात् तु जानामि मैथिली सा न संशयः।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥६॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥१०॥

आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम्।
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥११॥
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव।
आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि" ॥१२॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६]

अर्थ—"एक दिन मैंने देखा भयंकर कर्म करनेवाला कोई राक्षस किसी स्त्री को लिये जा रहा है। मैं अनुमान से समझता हूँ वह मिथिलेशकुमारी सीता ही रही होगी, इसमें संशय नहीं है, क्योंकि वह टूटे हुए स्वर में 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण! पुकारती हुई रो रही थी तथा रावण की गोद में नागराज की वधू (नागिन) की भाँति छटपटाती हुई प्रकाशित हो रही थी ॥९-१०॥ चार मन्त्रियों सहित पाँचवाँ मैं इस शैल-शिखर पर बैठा हुआ था। मुझे देखकर देवी सीता ने अपनी चादर और कई सुन्दर-सुन्दर आभूषण ऊपर से गिराये ॥११॥ रघुनन्दन! वे सब वस्तुएँ हम लोगों ने लेकर रख ली हैं। मैं अभी उन्हें लाता हूँ। आप उन्हें पहचान सकते हैं" ॥१२॥

निश्चय ही उनको मनुष्य समझकर सीताजी ने अपना चिह्न उनके निकट फेंका होगा। स्पष्ट है कि आकृति से वे मानव थे, बन्दर नहीं थे।

सुग्रीव ने अपने-आपको मनुष्य कहा—

सुग्रीव ने हनूमान् को राम व लक्ष्मण का परिचय लेने के लिए भेजते हुए यह कहा कि—

"अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः ॥२२॥

[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग २]

अर्थ—"मनुष्यमात्र को छद्मवेश में विचरनेवाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करनी चाहिए।"

रामायण के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी आर्य थे, रावण भी आर्यों में से था, यद्यपि अनार्य कर्म करने लग गया था तथा वाली आदि भी आर्य थे। जो वेदों और शास्त्रों को जानते, मानते और तदनुकूल ही संस्कार आदि करते थे, वे अनार्य कैसे?

सीताजी ने जैसे रामचन्द्रजी को आर्यपुत्र कहा, वैसे ही तारा ने भी वाली को आर्यपुत्र कहा—

"आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा" ॥४॥

—[वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग २७]

अर्थ—"हे आर्यपुत्र ! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू……" ॥४॥

यहाँ सीताजी ने रामचन्द्रजी को 'आर्यपुत्र' कहा, उसी प्रकार तारा ने बाली के मरने पर रोते हुए कहा कि—

"समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह ॥२६॥
सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति वादिनी" ॥२७॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १९]

अर्थ—"उन्हें देखकर उसके मन में बड़ी व्यथा हुई और वह अत्यन्त व्याकुल होकर पृथिवी पर गिर पड़ी ॥२६॥ फिर मानो वह सोकर उठी हो, इस प्रकार '**हा आर्यपुत्र !**"……॥२७॥

सुग्रीव ने बाली को आर्य कहा—

"आज्ञापयत् तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः" ॥३०॥

—[वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग २५]

अर्थ—"तदनन्तर वानरों के स्वामी राजा सुग्रीव ने आज्ञा दी कि मेरे बड़े भाई (आर्य) का और्ध्वदेहिक संस्कार शास्त्रानुकूल विधि से सम्पन्न किया जाए" ॥३०॥

वानरों के कलाकौशल का एक और प्रमाण—

वानर लोग विशाल भवन सात-सात तल्ले के बनाते थे। बड़े-बड़े दुर्गों का निर्माण करते थे, भाँति-भाँति के रंगों से भी चित्र बनाते तथा लकड़ियों आदि में भी चित्र खोदते थे। वस्त्र बुनते, सींते तथा सोने आदि के भूषण भी बनाते थे। अस्त्रों व शस्त्रों का प्रयोग करते थे। लंका पर आक्रमण करने के लिए समुद्र का पुल बाँधना भी वानरों का ही काम था।

विश्वकर्मा के पुत्र नल नामक वानर ने श्रीरामचन्द्रजी को कहा कि—

"अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे मकरालये ।
पितुः सामर्थ्यमासाद्य तत्त्वमाह महोदधिः ॥४८॥

समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये।
तस्मादद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः" ॥५३॥
—[वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२]

अर्थ—"प्रभो ! मैं पिता की दी हुई शक्ति को पाकर इस विस्तृत समुद्र पर सेतु का निर्माण करूँगा। महासागर ने ठीक कहा है ॥४८॥ मैं महासागर पर पुल बांधने में समर्थ हूँ, अतः सब वानर आज ही पुल बांधने का कार्य आरम्भ कर दें" ॥५३॥

पुल किस प्रकार बांधा गया—

"हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥६०॥
समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥६२॥
नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।
स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥६३॥
दण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथापरे।
वानरैः शतशस्तत्र रामस्याज्ञापुरःसरैः" ॥६४॥
—[वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२]

अर्थ—"महाकाय महाबली वानर हाथी के समान बड़ी-बड़ी शिलाओं और पर्वतों को उखाड़कर यन्त्रों (विभिन्न साधनों) द्वारा समुद्रतट पर ले आते थे ॥६०॥ उन वानरों ने सब ओर पत्थर गिराकर समुद्र में हलचल मचा दी। कुछ दूसरे वानर सौ योजन लम्बा सूत पकड़े हुए थे ॥६२॥ नल नदों और नदियों के स्वामी समुद्र के बीच में महान् सेतु का निर्माण कर रहे थे। भयंकर कर्म करनेवाले वानरों ने मिल-जुलकर उस समय सेतु-निर्माण का कार्य आरम्भ किया था ॥६३॥ कोई नापने के लिए दण्ड पकड़ते थे तो कोई सामग्री जुटाते थे। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा शिरोधार्य करके सैकड़ों वानर जो पर्वतों और मेघों के समान प्रतीत होते थे" ॥६४॥

स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड'—

"नलश्चक्रे······" (वा० रा०, युद्ध० २२।६२) का अर्थ करते हैं—"नल ने

महासेतु समुद्र के मध्य में बनवाया।"[1]

"ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
आगम्य गगने तस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥७५॥
विशालः सुकृतः श्रीमान् सुभूमिः सुसमाहितः ॥७६॥
अशोभत महान् सेतुः सीमन्त इव सागरे"॥

—[वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२]

अर्थ—"उस समय देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि उस अद्भुत कार्य को देखने के लिए आकाश में आकर खड़े थे ॥७५॥ वह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दरता से बनाया हुआ, शोभासम्पन्न, समतल और सुसम्बद्ध था। वह महान् सेतु सागर में सीमन्त के समान शोभा पाता था ॥७६½॥"

जटायु गृध्र पक्षी था या मनुष्य ?

जटायु दशरथजी का मित्र बताया गया है। **'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्'**—समान गुणवालों में ही मित्रता होती है, अतः यह सिद्ध है कि गृध्र पक्षी नहीं था। उसने जटा बढ़ाई हुई थी और वहाँ सी० आई० डी० का कार्य करता था। फिर गृध्र मीठी और मधुर वाणी बोलते हैं या कर्कश ? एक बात और, यहाँ गृध्र का एक विशेषण द्विज भी है। यहाँ यह आपत्ति हो सकती है कि द्विज तो पक्षी को भी कहते हैं। जटायु को पक्षी कहने का एक और कारण भी है। जटायु परमात्मा-प्राप्ति के प्रयत्न में संलग्न थे। ज्ञान और कर्म ही उनके दो पक्ष थे।

जो गृध्र को उड़नेवाला पक्षी ही मानते हैं उनके लिए एक अन्य अकाट्य प्रमाण भी प्रस्तुत है। वाल्मीकिजी ने जटायु के लिए आर्य विशेषण दिया है। जब रावण सीताजी को उठाकर ले जा रहा था तब जटायु को देखकर सीताजी ने कहा था—**"जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्"** (अर० ४९।३९)।

यहाँ जटायु को स्पष्ट ही 'आर्य' कहा है, अतः जटायु गीध नहीं था।

जटायु ने अपने कुल और गोत्र का वर्णन किया है। क्या पक्षियों के कुल और

---

१. "रामायण-दर्पण" पृष्ठ ७७ [सन् १९४७ ई० में आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

गोत्र होते हैं ?[१]

"यत् तत् प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः।
तत् स्वर्गगमनं पित्र्यं तस्य रामो जगाम ह ।।३४।।
स गृध्रराजः कृतवान् यशस्करं,
सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा,
जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम्" ।।३७।।

—[वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ६८]

अर्थ—"ब्राह्मण लोग परलोकवासी मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति कराने के उद्देश्य से जिन पितृसम्बन्धी मन्त्रों का जप आवश्यक बतलाते हैं, उन सबका भगवान् श्रीराम ने जप किया ।।३४।। महर्षितुल्य श्रीराम के द्वारा दाहसंस्कार होने के कारण गृध्रराज जटायु को आत्मा का कल्याण करनेवाली परम पवित्र गति प्राप्त हुई। उन्होंने रणभूमि में अत्यन्त दुष्कर और यशोवर्धक पराक्रम प्रकट किया था। परन्तु अन्त में रावण ने उन्हें मार गिराया" ।।३७।।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से वानर जाति, पशु या पक्षी नहीं थी, वरन् मनुष्य थी।

मनुष्येतर जातियों के नामों पर कुछ उपजातियां—

'नाग' नाम की मनुष्यजाति रामायण व महाभारतकाल में थी। नागराज ऐरावत की कन्या स्नुषा उलूपी से अर्जुन का विवाह हुआ था। इसका वर्णन महाभारत भीष्मपर्व में है। नागजाति में कुछ लोग सर्प (दौड़ने, भागनेवाले) भी कहलाते हैं। उलूक व मत्स्यजाति का वर्णन महाभारत, सभापर्व में है।

वानर, कपि, प्लवंग, राक्षस आदि मनुष्य थे। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के विचार—

रेवरेंड फ़ादर कामिल बुल्के एस० जे०, एम० ए०, डी० फ़िल०—

"सबसे स्वाभाविक अनुमान यह है कि आजकल के आदिवासियों के समान

१. द्रष्टव्य—ब्रह्मचारी जगदीश विद्यार्थी विद्यावाचस्पति, एम० ए० लिखित 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' पुस्तक, पृष्ठ ७३-७४ की पाद-टिप्पणी [संवत् २०२१ वि० में गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]।

उन जातियों के भिन्न-भिन्न कुल भिन्न-भिन्न पशुग्रों ग्रौर वनस्पतियों की पूजा करते थे। जिस कुल के लोग जिस पशु या वनस्पति की पूजा करते थे वे उसी के नाम से पुकारे जाते थे। इस पशु ग्रथवा वनस्पति को ग्राजकल के विद्वान् 'टोटम' कहते हैं। ग्राधुनिक भारत में ऐसी जातियाँ मिलती हैं जिनके भिन्न गिरोहों के टोटम बाघ, बकरा, ऋक्ष, वानर ग्रादि हैं।"[1]

भारतीय विद्वानों के विचार—

श्री चिन्तामणि वैद्य विनायक एम० ए०—"वानरजाति के लोग सचमुच वानर के समान दिखाई पड़ते थे ग्रौर इससे उनका यह नाम चल पड़ा।"[2]

महामहोपाध्याय पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर गीतालंकार—

"क्या वानर (वार्वेरियन्) बर्बर थे?" शीर्षक[3] में लिखते हैं—

"..........वानरों के पास ग्रतिशय शक्तिशाली ग्रौर वेगवाली यंत्रसामग्री (Extremely powerful and speedy machinary) थी ग्रर्थात् वानर बर्बर नहीं थे। यह बात निश्चित रूप से सिद्ध होती है।

सेतु किस प्रकार बाँधा गया, इसका वर्णन महर्षि वाल्मीकिजी के शब्दों में ही देखिए—

---

१. "रामकथा" पृष्ठ ११७ [नवम्बर १९५० ई० में हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण] इसी शोधप्रबन्ध के पृष्ठ ११७ की ही पादटिप्पणी में लिखा है—

"दे० सी वान फूरर : हाइमेनदार्फ, दि रेदिस ग्राव दि विद्यन हिल्स, पृ० ३२९ (ज० रा० ए० सो० १९४८, पृ० १९०)" छोटा नागपुर में रहनेवाली ऊराग्रों नामक द्राविड जाति में तिग्गा ग्रथवा बजरंगी गोत्र पाया जाता है जिसका ग्रर्थ हनुमान (बन्दर) ही है। मुण्डा जाति में भी गड़ी (ग्रर्थात् बन्दर) का टोटम मिलता है।

२. The Riddle of the Ramayan, pp 153 [Bombay, 1906] तुलना करो—'रामकथा' पृष्ठ ११७ की पादटिप्पणी पृ० सं० १।

३. "बालकाण्ड की समालोचना" पृष्ठ २९ से ३९ तक [संवत् २०११ सन् १९५५ ई० में स्वाध्याय मण्डल, ग्रानन्दाश्रम, किल्लापारडी द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]।

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ।
दण्डान्यन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथापरे ।
नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः ।

—(युद्धकाण्ड, २२।५८-६०)

अर्थात्—कोई वानरवीर हाथ में सूत्र लिये हुए लम्बाई-चौड़ाई नापने के काम करने पर नियुक्त थे और कोई दण्ड हाथ में लेकर ऊँचाई-नीचाई (लेवल्) देखते थे और शेष वानरवीर पत्थर, मिट्टी, वृक्ष आदि लाकर यथास्थान गड्ढों में डालते थे और उनको पाटकर बराबर कर देते थे ।"

उपर्युक्त वर्णन में जो 'सूत्र' शब्द है वह आधुनिक फीता या Measuring tape और 'दण्ड' शब्द Measuring Pole या Levelling staff यानी 'लट्ठे' के द्योतक हैं । फीते से लम्बाई और चौड़ाई नापी जाती है और लट्ठे से लेवल देखकर किस जगह कितना भराव डालना या किस जगह कितना खोदना इसका ज्ञान होता है ।

वर्तमानकालीन मिलिटरी इंजीनियरिंग में बेड़ों के पुल वगैरह बनाने के काम इसी प्रकार के होते हैं । इससे मालूम होता है कि आधुनिक Military Engineering में भी त्रेतायुगीन वानर पीछे नहीं थे, किन्तु इतना बड़ा विस्तीर्ण समुद्र केवल पाँच ही दिन के अत्यल्प काल में पाट दिया, इस वर्णन से तो वानरों का Military Engineering बहुत ही उच्च श्रेणी का था, यह मान्य करना ही पड़ेगा । इससे भी **वानर बर्बर** नहीं थे, यही सिद्ध होता है ।

अब यहाँ पर पाश्चात्य विद्वानों के साम्प्रदायिक हमारे आधुनिक विद्वान् लोग यह शंका उपस्थित करेंगे कि, "बारूद का आविष्कार तो सबसे पहले यूरोप में ईसवी सन् १२४७ में फ्रायर बेकन नामक एक यूरोपीय रासायनिक ने किया है । इससे पूर्व बारूद जब संसार में ही नहीं थी, तो वह रामायणकालीन भारतवर्ष में कहाँ से आती ?" लेखक महाशय को "हमारी संस्कृति सर्वोच्च थी" यह बात किसी प्रकार से प्रमाणित करना है, सो उसके लिए रामायण के श्लोकों के मनगढ़न्त और खींचतान कर अर्थ कर रहे हैं । आधुनिक विद्वान् लोगों की इस प्रकार विपरीत भावना हमारे उपर्युक्त विधानों के कारण हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इसलिए यूरोपीय विद्वानों के ग्रन्थों से हम आगे कतिपय प्रमाण उद्धृत करते हैं—

(१) यूरोप की वर्तमान युद्ध-प्रणाली के आद्य प्रणेता नेपोलियन बोनापार्ट अपने "Aid Memory to Military Sciences" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं "Gun-powder was known to India and China, and was used for the purpose of war many centuries before Christian era." अर्थात् बारूद बनाना और युद्ध में उसका उपयोग करना, दोनों बातें भारतीय तथा चीनी लोगों को ईसामसीह के जन्मकाल से कई शताब्दियाँ पूर्व मालूम थीं।

ग्रीनर नामक एक पाश्चात्य इतिहासकार ने अपने "Gunnery in 1857" नामक ग्रन्थ में लिखा है—"The inhabitants of India were unquestionably acquainted with its (of gun-powder) composition at an early date. अर्थात् भारतीय लोग बहुत प्राचीन काल से बारूद और उसके घटक द्रव्यों को जानते थे।

प्रोफेसर गस्टाव और भी कहते हैं कि "विपक्षी के विरुद्ध जिन-जिन अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है, उनमें बारूद-भरे धुएँ के गोलों का भी प्रयोग होता है, ऐसा महर्षि वैशम्पायन अपने 'नीति-प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं। इन धुएँ के गोलों को संस्कृत भाषा में 'धूम्र-गोलक' अथवा 'चूर्णगोलक' कहते हैं और उन्हीं को इंग्लिश भाषा में 'Smoke balls' कहते हैं।"

पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थों से उद्धृत किये हुए उपर्युक्त प्रमाणों से हमें आशा है कि हमारे आधुनिक विद्वानों को यह विश्वास करने में अब कोई प्रत्यवाय नहीं होगा कि वानरों को सुरंग लगाने का, बारूद बनाने का तथा उसका प्रयोग करने का यथेष्ट ज्ञान था अर्थात् वानर बर्बर नहीं थे, किन्तु यह बात निर्विवाद प्रमाणित हो रही है कि उनको Military Engineering का इतना ज्ञान था कि जो आधुनिक पाश्चात्य इंजिनीयरों से कम नहीं कहा जा सकता।"

वानर मानवी वेष में न रहें

राम-रावण युद्ध के प्रारम्भ में प्रभु रामचन्द्र की ओर से स्थिर आज्ञा (Standing order) सब सेना को दी गई थी, वह देखिए—

"न चैव मानुषं रूपं कार्यं कपिभिराहवे।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले॥३३॥
वानरा एव नश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन् भविष्यति।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान्॥३४॥

अहमेव सहभ्राता लक्ष्मणेन महौजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः" ।।३५।।

[वा० रा०, युद्ध०, स० ३७]

"इस युद्ध में वानर कभी मानवी वेष न धारण करें। इस हमारे सैन्य का वेष (Uniform) वानरवेष ही सबका रहे। मैं स्वयं, लक्ष्मण और अपने चार मंत्रियों के साथ विभीषण ये सात ही मनुष्यवेष में रहकर शत्रु से युद्ध करेंगे।" यह स्थिर आज्ञा थी। जबतक युद्ध समाप्त होगा तबतक यह आज्ञा जारी रहनेवाली थी। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य, वानर और राक्षस के वेष ही अलग-अलग थे। उनके शरीर समान अर्थात् मानवी शरीर ही थे। नहीं तो विभीषण मानव-वेष में रहेंगे इसका और क्या अर्थ हो सकता है? सैनिकों की पहचान वेष से (Unifrom से) होती है। इसीलिए कौन किस वेष में रहे इसकी स्थिर आज्ञा (Standing order) इस तरह दी गई थी। इससे वानर और राक्षस मानव-शरीरधारी थे यह बात सिद्ध होती है।"[1]

डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी), पी-एच० डी०, अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ लिखते हैं—"वा० रामायण के अनुसार वानर जाति के भी वास्तविक मानव जाति होने के प्रमाण मिलते हैं, जब कि मानस में इस जाति का भी अस्तित्व अधिकांशतः काल्पनिकता और पौराणिकता से आच्छादित है। इस जाति में आर्यों के-से नैतिक आदर्श और राक्षसों जैसी भौतिक समृद्धि नहीं थी, फिर भी कथाक्रम में इनके उच्च आचरण और विचारों के संकेत प्राप्त होते हैं।

दोनों कवियों ने उनके कामरूपधारी होने के विषय में कहा है, उनके कपित्व अर्थात् चापल्य और उच्छृंखलता का चित्रण किया है। उनके अपार बल, शक्ति, मल्लविद्या, उछल-कूद, मार-काट, तोड़-फोड़, द्रुम-शिला-नख-दंत-लात-मुष्टिका-थप्पड़ आदि से युद्ध करने, लम्बी दौड़ और लम्बी छलांग भरने, भार उठाने, भार जमाने आदि शारीरिक बल-सम्बन्धी विशेषताओं का वर्णन दोनों कवियों ने किया है जिससे उनकी प्रकृति-प्रदत्त शक्ति और एक वनेचर जाति होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। अन्तर यह है कि तुलसी ने उनके अधिकांश गुणों और शक्तियों को

---

१. वही, पृष्ठ ५४-५५

रामभक्ति से प्रेरित माना है, वाल्मीकि ने उन्हें अधिकांश ऐतिहासिक स्तर पर देखा है। उनके सुन्दर राजभवन, वस्त्र, संगीत-प्रेम आदि की भी चर्चा की है। उनकी विविध जातियों और विशाल संगठन का वर्णन किया है। उनकी वनस्पति-विषयक जानकारी का भी चमत्कार दिखलाया है।"[1]

डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास एम० ए०, पी-एच०डी० लिखते हैं—

"वानरों की संस्कृति को महान् एवं समुन्नत अंकित किया गया है। सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा बाली की अन्त्येष्टि दोनों वैदिक विधि से सम्पन्न हुए थे। सुग्रीव, हनूमान् तथा अंगद का जो प्रभावशाली चित्रण कवि ने किया है, वह उनकी महान् संस्कृति का सूचक है। वानरों के सम्पत्ति-वैभव, वसनाभरण, शिक्षा-दीक्षा, धर्म-कर्म तथा सामाजिक और राजनैतिक संगठन के वर्णन से यही स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि रामायणकार ने राम के सहयोगियों को वस्तुतः बन्दर नहीं माना है।

इस जाति के जिन नामों का उल्लेख रामायण में आया है, उनमें 'वानर' शब्द १०८० बार प्रयुक्त हुआ है और उसी के पर्याय रूप में 'वनगोचर', 'वन-कोविद', 'वनचारी', 'वनौकस्' आदि शब्द आये हैं। इससे स्पष्ट है कि 'वानर' शब्द बन्दर का सूचक न होकर वनवासी का द्योतक है। उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार करनी चाहिए—वनसि (अरण्ये) भवः चरो वा इति वानरः = वनौकसः, आरण्यकः। वानरों के लिए 'हरि' शब्द ५४० बार आया है। इसे भी 'वनवासी' आदि समासों से स्पष्ट किया गया है। 'प्लवंग' शब्द २४० बार प्रयुक्त हुआ है, और दौड़ने की क्षमता का व्यंजक है। वानरों की कूदने-दौड़ने की प्रवृत्ति को सूचित करने के लिए प्लवंग या प्लवंगम शब्द का व्यवहार उपयुक्त भी है। हनूमान् उस युग के एक अत्यन्त शीघ्रगामी दौड़ाक या धावक थे, इसीलिए उनकी सेवाओं की कई बार आवश्यकता पड़ी थी। 'कपि' शब्द ४२० बार आया है, जो सामान्यतः बन्दर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। क्योंकि रामायण में वानरों को पूंछयुक्त बताया गया है, इसलिए वे कपयः थे। वानरों को मनुष्य मानने में सबसे बड़ी बाधा उनकी यही पूंछ है। पर यदि सूक्ष्मता से देखा जाए तो यह पूंछ हाथ-पैर के समान

---

१. "वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन" शोधप्रबन्ध पृष्ठ-२५७ [सन १९६९ ई० में प्रकाशन प्रतिष्ठान, सुभाष बाजार, मेरठ द्वारा प्रकाशित]

शरीर का अभिन्न अंग न होकर वानरों की एक विशिष्ट जातीय निशानी थी, जो सम्भवतः बाहर से लगाई जाती थी; तभी तो हनुमान् की पूंछ जलाये जाने पर भी उन्हें किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ। रावण ने पूंछ को कपियों का सर्वाधिक प्रिय भूषण बताया था—'कपीनां किल लांगूलमिष्टं भवति भूषणम् (५।३३।३)।

बन्दर न होते हुए भी वानरों की आकृति, रूप-रंग, मानसिक चेष्टाओं तथा शारीरिक हरकतों में बन्दरों के-से लक्षण अवश्य मौजूद थे। चपल, निरंकुश और रूखा स्वभाव, रोएंदार, विकृत आकृति, कूदने-फांदने की प्रवृत्ति, विलास-प्रियता, यौन-सम्बन्धों में अनियमितता, जंगलों और पहाड़ों में निवास, पेड़ों, चट्टानों, नखों और दांतों का शस्त्ररूप में व्यवहार, किलकारियां मारने में रुचि—इन विशेषताओंवाली विचित्र जाति को देखकर आर्यों ने उसे बन्दरों के समान ही समझ लिया होगा, और जब कभी वह इन वानरी प्रवृत्तियों को प्रकट करती, तब आर्य उसे कपि या शाखामृग जैसे नामों से सम्बोधित करते। राक्षस लोग वानरों को कपि या वानर अहंकारवश या उनके प्रति तुच्छता की भावना के कारण कहते थे, वैसे ही जैसे रूसी लोग किसी समय जापानियों को 'पीला बन्दर' (यैलो मंकी) कहकर उनका उपहास किया करते थे।

अब यह प्रायः स्वीकार कर लिया गया है कि प्राचीन भारत में पशुओं के नाम से अभिहित कई जातियां निवास करती थीं, जैसे नाग (सांप), ऋक्ष (भालू) और वानर (बन्दर)। कालान्तर में लोक-मानस ने उन्हें आकृति और स्वभाव में उन-उन पशुओं का ही प्रतिरूप मान लिया, जिनका नाम वे धारण करती थीं, या जिनके साथ उनका कुछ-कुछ रूपसाम्य था अथवा जिनकी वे देवतारूप में पूजा करती थीं, अथवा जिनको उन्होंने अपना जातीय चिह्न मान लिया था।"[1]

श्री के० एस० रामस्वामी शास्त्री ने वानरों को एक आर्यजाति माना है, जो दक्षिण भारत में बस जाने के कारण उत्तर भारतवासी अपने मूल बन्धुओं से दूर पड़ गई। बाद में आर्य-संस्कृति से प्रभावित होने पर वह प्रगति करने लगी।"[2]

---

१. "रामायणकालीन समाज" पृष्ठ ७१-७२-७३ [सन् १९५८ ई० में सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

२. "वही, पृष्ठ ७३ तुलना करो—"सरस्वती भवन स्टडीज" भाग ५, पृष्ठ ७३

डॉ० जनार्दनदत्त शुक्ल अपने "वानर बन्दर नहीं एक जाति है" शीर्षक लेख[1] में लिखते हैं—

"रामायण में वर्णित देवता, वानर, राक्षस, पक्षी, ऋक्ष, दानव, भूत, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, असुर, सर्प, नाग, भृग, सिद्ध आदि सभी मनुष्य थे। निश्चय ही बन्दर यानी वानर, रीछ, गिद्ध इत्यादि पशु-पक्षी नहीं थे। यदि ये पशु-पक्षी होते तो रामायण की कथा ही न बनती। यदि तारा बन्दरी होती तो राम द्वारा ज्ञान देना असंगत था, वह कैसे समझती कि……

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा॥

और हनूमान् राम से और सीता से और रावण तथा विभीषण से वार्तालाप कैसे करते यदि बन्दर होते ?

कुछ विद्वानों ने वानर जाति को विंध्य पर्वतमाला के दक्षिण में निवास करने-वाली एक वानर जाति माना है, जिन्होंने आर्यों को सहयोग दिया। रामस्वामी शास्त्री ने वानरों को आर्यजाति ही माना है, जो दक्षिण भारत में बस गये। प्राचीन भारत में पशुओं के नाम से अभिहित कई जातियाँ निवास करती थीं, जैसे नाग, ऋक्ष यानी भालू, वानर इत्यादि। कालान्तर में लोकमानस ने उन्हें आकृति एवं स्वभाव में उन पशुओं का ही प्रतिरूप मान लिया।"

श्री शिवनन्दन सहायजी लिखते हैं—सुग्रीव, अंगद, हनुमान् तथा जामवान् प्रभृति क्या सचमुच में वानर ही थे ? रामायणपाठ से तो ऐसा ही प्रतीत होता है, परन्तु लोग कहते हैं कि वे एक जाति के वनपर्वतवासी मनुष्य ही थे। जिस जाति की ध्वजा पर बन्दर का चिह्न था वह वानर जाति कहलाती थी। जिसकी ध्वजा पर रीछ का चित्र था वह रीछ कहलाती थी। जैसे आजकल रूसियों की ध्वजा पर रीछ का तथा अंग्रेज जाति की ध्वजा पर सिंह का चित्र होने से उन देशों के वीरों को British Lions और Russion Bears कहते हैं। जैनों की राम-रावण-कथा में भी वानर चिह्नाङ्कित ध्वजा मुकुटधारी जाति वानरवंशीय कही

---

१. मासिक पत्रिका "कादम्बिनी" नई दिल्ली, वर्ष २३, अक्टूबर १९८३ ई०, अंक १२, पृष्ठ ६६

गई है।"[1]

श्री अमृतसरिया राम मणोत का विचार है—"दक्षिण भारत में पंचवटी के दक्षिण की ओर किष्किन्धा नाम की एक नगरी थी जिसमें वानर जाति के लोग राज्य करते थे। ये लोग भी मनुष्य ही थे। बन्दर और रीछ नहीं थे। परन्तु उत्तरी भारत के लोगों की तरह अधिक सुन्दर और गौर वर्ण नहीं थे। उनके नाम भी प्रायः शरीर के अवयवों के अनुसार ही होते थे, जैसे बाली (घने बालोंवाला), सुग्रीव (सुन्दर ग्रीवावाला), हनुमान् (बड़ी ठोड़ी वाला), और अङ्गद (बाहुभूषण) आदि। अब तक इण्डोनेशिया के लोग इन जैसे नाम रखते हैं जैसे सुकर्ण (सुन्दर कानोंवाला) आदि।............"[2]

आचार्य रामदेव जी बी० ए०, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय लिखते हैं—

"हनूमान् और उनके सहचर मनुष्य थे, पूंछवाले वानर नहीं—कौन सत्-असत् का विवेकी पुरुष ऐसा है जो विद्याव्रतस्नातक श्रीरामचन्द्रजी की इस सम्मति को पढ़कर कि हनूमान् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अखिल व्याकरण शास्त्र के ज्ञाता थे, यह कह सके कि हनूमान् वानर थे ? क्या परमात्मा की सृष्टि में कहीं भी ऐसा नियम दिखाई देता है जिससे अनुमान किया जाय कि वानर भी वेदों का ज्ञान धारण कर सकता है ? अतः निश्चय है कि वैदिक ज्ञानों के धारण करनेवाले हनूमान् तथा सुग्रीवादि पूंछवाले वानर नहीं थे। अभी थोड़े दिनों की बात है कि जब रूस और जापानियों का युद्ध आरम्भ हुआ था तो जापानियों की कूदफांद देख रूसियों ने उनका नाम "yellow monkeys" ('पीले बन्दर') रख दिया था [जापानियों का रंग कुछ पीला होता है]। यह शब्द जापानियों के लिए वर्षों तक रूस में व्यवहृत होता रहा। Russian bear (रूसी भालू) ऐसे शब्द हैं

---

१. "गोस्वामी तुलसीदास" (पं० श्री नलिन विलोचन शर्मा द्वारा सम्पादित), पृष्ठ ३३९-३४० की पाद-टिप्पणी [संवत् २०१७ सन् १९६१ ई० में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशित, संशोधित, पुनर्मुद्रित संस्करण]।

२. श्रीमद्भगवद्गीता (अमृतवर्षिणी टीका सहित) प्रथम भाग, पूर्वज्ञान, पृष्ठ २९ [सन् १९७३ ई० में लेखक द्वारा प्रथम संस्करण, साहलों जिला जालन्धर (पंजाब) द्वारा प्रकाशित]

जिन्हें आज भी सब यूरोपवाले तथा अन्यान्य कई देशों के लोग व्यवहृत करते हैं। British Lion (ब्रिटिश सिंह) तथा John Bull (जॉन बुल) ऐसे शब्द हैं जो बराबर अंग्रेजों के लिए व्यवहृत होते हैं। नागवंशी क्षत्रिय प्रसिद्ध हैं जिनके वंश में ही छोटानागपुरादि के कई महाराज हैं जो अपने को साभिमान "नाग" कहते हैं। क्या वे नाग अर्थात् सर्प हैं ? नहीं, नाग की तरह क्षात्र क्रोध-धारण के कारण उनका वंश नाग कहलाता है। एवं विशेष स्फूर्ति होने के कारण सुग्रीवादि के सहचर तथा अनुचरादि वानर कहलाते थे। महर्षि वाल्मीकि के वास्तविक भावों को न समझ भारत में जबकि अद्भुत गाथावर्णन-शैली पुराणों के समय से प्रचरित हुई तब हनूमान्, सुग्रीवादि के नामों के साथ अद्भुत गाथाएँ बढ़ाई गईं। क्या कभी ऐसा हो सकता है कि वानर जाति की राजधानी किष्किन्धा का वर्णन मनुष्यों की एक समृद्धिशालिनी राजधानी जैसा रामायण में विद्यमान हो और फिर उसके निवासी और राजकार्य में संचालक पूँछोंवाले वानर माने जाएँ ? काव्य की शैली है कि किसी के नाम को भी उसके पर्यायवाची शब्दों से पुकारते हैं, इसी कारण वानर के स्थान में कप्यादि का भी रामायण में प्रयोग है।

अन्यान्य काव्यों में भी विश्वामित्र के लिए सर्वमित्र तथा दशरथ के लिए पंक्तिरथ व्यवहृत हुए हैं।"[1]

पं० उदयवीर शास्त्री, अपने "किष्किन्धा का वानर-राजवंश" शीर्षक लेख[2] में लिखते हैं—"......वाल्मीकि ने किष्किन्धा के राजवंश का वर्णन उन्हें 'बन्दर' समझकर नहीं किया। इस प्रकार सामूहिक रूप से बन्दरों का न नामकरण होता है, न उनकी वंश-परम्परा का उल्लेखन, न उनके विवाह और सम्बन्धियों का वर्णन, न उनकी पढ़ाई-लिखाई और राजशासन-व्यवस्था व मन्त्रिमण्डल आदि का विवरण। या तो इसे 'काकोलूकीयम्' समझिए, या इसकी तह में जाकर इसकी वास्तविकता को उजागर कीजिए। ये बातें स्पष्ट करती हैं कि वाल्मीकि ने किष्किन्धा के राजवंश को आज जैसा 'बन्दर' समझकर उसका विवरण नहीं दिया।......"

---

१. भारतवर्ष का इतिहास (वैदिक तथा आर्ष पर्व), पृष्ठ ३३१-३३२

२. मासिक पत्रिका "विश्वज्योति" होशियारपुर का "रामायण-विशेषांक" वर्ष २० अप्रैल-मई १९७१ ई०, संख्या १ व २, पृष्ठ १४१ पर प्रकाशित।

क्या वानरों व हनूमान्‌जी को पूंछें थीं ?

वानरजाति व हनूमान् को वास्तविक पूंछें नहीं थीं, वरन् वे कृत्रिम थीं।

"यह मानना पड़ेगा कि रामायणकालीन हनूमान् पूंछ नामक उपकरण से युक्त थे। जैन साहित्य में इसे इनका **आयुध** बताया गया है और किसी के पूंछ का वर्णन नहीं मिलता।"[1]

श्री दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—

"पूंछ का वर्णन हनूमान् और उनके लंकादहन के प्रसंग में ही विशेष रूप से हुआ है। बाली, अंगद, सुग्रीव तथा वानर स्त्रियों के पूंछ के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। अन्वेषकों ने पूंछ लगानेवाली जातियों के विषय में भी खोज की है। भारत में विजगापतन के शवरों में पूंछ आभूषण के रूप में पहिनी जाती है।"[2]

श्री अमृतसरियाजी भणोत भी हनूमान्‌जी की पूंछ को कृत्रिम मानते हुए लिखते हैं—"...रावण हनूमान्‌जी को देखकर उपहास करता हुआ बोला, अहो ! यह पुरुष तो वानरजाति का नहीं है, बन्दरों की जाति से मालूम होता है। निरा बन्दर है। केवल एक पूंछ की कसर है सो अभी सर्जरी के द्वारा एक लम्बी पूंछ इसके जोड़ दी जाए। डाक्टरों को आज्ञा मिलने की ही देर थी। उन्होंने बहुत जल्दी बहुत लम्बी एक पूंछ हनूमान्‌जी की पीठ के साथ जोड़ दी।"[3]

श्री रामायण प्रेमी अपने 'रामायण के वानर-ऋक्ष' शीर्षक लेख[4] में लिखते हैं—"रामायण के ऋक्ष-वानर साधारण पशु रीछ-बन्दर नहीं थे। यह कोई विवेक-बुद्धि सम्पन्न अनार्य[5] मानव-जाति थी जो आज नष्ट या कहीं रूपान्तरित हो गई है।

---

१. द्रष्टव्य : डॉ० रामगोविन्दचन्द्र जी लिखित "हनुमान् के देवत्व तथा मूर्ति का विकास" पृष्ठ १७२ [सन् १९७६ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित]।

२. बंगाली रामायण, पृष्ठ ५२ [यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, सन् १९२० ई०]

३. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता (अमृतवर्षिणी टीका सहित) प्रथम भाग, पृष्ठ ३०

४. मासिक पत्र "कल्याण" का "श्री रामायणांक" वर्ष ५, खण्ड १, श्रावण १९८७, जुलाई १९३० ई०, संख्या १, पृष्ठ ३६०

५. अनार्य जाति नहीं वरन् आर्य जाति थी, पीछे पर्याप्त प्रमाण दिये गये हैं। [लेखक]

संभव है इनके पूंछ रही हो, क्योंकि रामायण में पूंछ का वर्णन प्रायः मिलता है। पूंछ के द्वारा श्री हनूमान् जी का लंका-दहन प्रसिद्ध है। यह भी हो सकना है कि ये उस समय की अपनी जाति की सभ्यता के अनुसार कपड़े की पूंछ-सी बनाये रखते हों। कुछ मुसलमान जातियों में और राजपूताने में चाल थी और कहीं-कहीं अब भी है कि स्त्रियां अपनी चोटी को ऊन को आटी से गूंथकर इतनी लम्बी बना लेती थीं जो पीठ में पैरों तक लटकती रहती थी। जयपुर के नागे पूंछ-सी बनाये रखते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष कहा नहीं जा सकना, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वेदाध्ययन, यज्ञ-याग, दान-पुण्य, ज्ञान-विज्ञान, ईश्वर-भक्ति, राज्य-सञ्चालन, गायन-वादन, कला-कौशल आदि कार्यों को करनेवाली जाति पशु-जाति नहीं हो सकती, संभव है इस मानव जाति का नाम 'वानर' रहा हो।...."

डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी), पी-एच०डी० लिखते हैं—"वानरों की पूंछ के विषय में दोनों ही कवियों ने स्पष्टीकरण नहीं किया है कि यह उनके शरीर का अंग था, अथवा ऊपर से धारण किया हुआ जातीय चिह्न जैसा कि कुछ विद्वानों का विचार है। पूंछ हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने से तो यह उनके शरीर का ही अंग प्रतीत होती है, परन्तु पूंछ जलने पर भी शरीर न जलने और पूंछ के बुझाए जाने से यह पृथक् भी प्रतीत होती है।......"[1]

डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास एम०ए०, पी-एच० डी०—"पूंछ का वर्णन विशेषकर हनुमान् और उनके लंका-दहन के सिलसिले में ही अधिक हुआ है। वाली, सुग्रीव, अंगद तथा वानर-स्त्रियों में पूंछ होने का विशेष प्रमाण नहीं मिलता। अन्वेषकों ने इतिहास में पूंछ लगानेवाले व्यक्तियों, जातियों का अस्तित्व ढूंढ निकाला है। बंगाल के कवि मातृगुप्त हनुमान् के अवतार माने जाते थे और वह एक पूंछ लगाते थे। (दिनेशचन्द्र सेन—'बंगाली रामायण' पृ० ५८)। भारत के

---

१. "वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन" पृष्ठ २५७-२५८ [गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—"विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ, माथ नवाय पूछत अस भयऊ"—इसका तात्पर्य है जब हनूमान्जी विप्ररूप में श्रीरामचन्द्रजी से मिलने गये थे तो उस समय उनकी पूंछ नहीं थी। यदि जन्म से उनकी पूंछ होती तो उस समय वह छिप नहीं सकती थी। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि हनूमान्जी की पूंछ कृत्रिम थी—लेखक]

एक राज-परिवार में राज्याभिषेक के समय पूंछ धारण करने का रिवाज प्रचलित था (वही)। श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अपने अंडमान-कारावास के संस्मरणों में लिखा है कि इस द्वीप में पूंछ लगानेवाली एक आदिवासी जाति रहती है (महाराष्ट्रीयकृत 'रामायण-समालोचना')। विजगापत्तन के शवरों में पूंछ आभूषण के रूप में पहनी जाती है (जी० रामदास)।"[1]

श्री ईश्वरीप्रसादजी 'प्रेम' एम० ए०, साहित्यरत्न लिखते हैं—

"लांगूल वास्तव में वानर जाति का एक जातीय भूषण था, जिसका पराये हाथ से बिगड़ जाना वे जातिमात्र का अपमान समझते थे। जैसे कि आजकल भी अंग्रेज लोग टोपी का, सिख पगड़ी वा केशों का, पठान कुरान का, आर्य (हिन्दू) यज्ञोपवीत का, राजपूत खण्डे का समझते हैं। इसी विचार से रावण ने यह दण्ड विचार किया, क्योंकि इसे वह महादण्ड जानता था। लांगूल नामक पूंछ के होने से जिन्होंने हनुमान् को पशु बना लिया उन्होंने लांगूल को पूंछ बना लिया, परन्तु यदि वास्तव में लांगूल पूंछ का वा किसी अंगविशेष का नाम होता तो रावण वा० रा० सुन्दर काण्ड सर्ग ५३ श्लोक में 'इष्टं भवति भूषणम्' न कहकर 'अंगं भवति ह्युत्तमम्' कहता। एक जैनी पण्डित ने हमें बताया था कि 'दशरथजातक' में 'लांगूल' 'करकङ्कण' का नाम है। संभावना भी यही है कि वह कंकण वीरता का पदक होता हो।"[2]

श्री ब्रह्मचारी जगदीश विद्यार्थी एम० ए०, साहित्यरत्न (अब स्वामी जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती)—"वन्दरों को सबसे प्रिय है उनकी अपनी पूंछ। इसी आधार पर वानर जाति के मनुष्य बनावटी पूंछ धारण करते थे जो उन्हें कूदने-फांदने में भी सहायता देती थी। इस पूंछ को ये बहुत सम्मान देते थे। इसके अपमान को वे जातीय अपमान समझते थे, तभी तो रावण ने इस पूंछ को जलाने की आज्ञा दी थी।"[3]

स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड [पूर्व पण्डित प्रियरत्नजी, आर्ष

---

१. "रामायणकालीन समाज" पृष्ठ ७२ की पाद-टिप्पणी।

२. "मासिक पत्रिका "तपोभूमि" मथुरा का "शुद्ध रामायण" वर्ष ११ पौष २०२१ : दिसम्बर १९६४ ई०, अंक ११, पृष्ठ ३०५ की पाद-टिप्पणी।"

३. "मर्यादा पुरुषोत्तम राम" पृष्ठ १०२-१०३ की पाद-टिप्पणी।

वैदिक अनुसन्धानकर्त्ता] लिखते हैं—"हनुमान् आदि वानर तो कहे जाते थे पर इतने मात्र से वे बन्दर थे ऐसा नहीं माना जा सकता, कारण कि नर मनुष्य को कहते हैं 'वा-नर' विकल्प से नर अर्थात् नरों की भाँति प्रसिद्ध, नगरनिवास न करके गिरि-पर्वतों की गुहाओं में, भूतल-गृहों में रहनेवाले होने से वे वानर कहे जाते हों जैसे रूस में गोरिल्ला सेना और सैनिक आजकल भी वर्तमान हैं। वानर उनका कर्मनाम हो सकता है, हां उनके पूंछ होने का वर्णन अवश्य वाल्मीकि रामायण में आता है। इससे यदि उनको बन्दर ही कहा जाए तो यह भी बहुत ही चिन्तनीय है, कारण कि उनके ऐसे बहुत वर्णन आते हैं जो बन्दर होने के प्रतिकूल हैं और मनुष्य होने को सिद्ध करते हैं, जैसे राम के साथ उनका वार्तालाप करना और उनमें मित्रता होना तो है ही, पर साथ में उनका राज्यभार संभालना, वेद-व्याकरण का ज्ञाता होना, अस्त्रविद्या में कुशलता, प्राकृत बन्दरों से भिन्न बताया जाना आदि।

सुग्रीव मनुष्यरूप धारण करके राम से बोला—

हनुमान् और सुग्रीव का इस प्रकार बन्दररूप को छोड़कर मनुष्यरूप में आना सिद्ध करता है कि हनुमान् आदि का जो वानर-रूप था वह छोड़ा जानेवाला होने से जन्म का नहीं था किन्तु कृत्रिम (बनावटी) था। जबकि कृत्रिम बन्दर का रूप उन्होंने बनाया हुआ था तब पूंछ का होना अनिवार्य हुआ। बन्दर का वेश उन्होंने अपना क्यों बनाया हुआ था? इसके कारण अनेक हो सकते हैं। राज-नैतिक चाल से नागरिक नर सम्राटों के या राक्षसों के भय से उन्होंने वानरवेश धारण किया हो या सैनिक वेश के लिए हो, आजकल विषैली गैस छोड़नेवाले सैनिकों का वेश हाथी जैसा हो जाता है, मुख के आगे नाक के साथ लम्बी सूंड श्वास लेने की लगी रहती है, इस सेना को हाथी पलटन कह सकते हैं जैसे घाघरा पहिननेवाली पलटन घाघरा पलटन कहलाती और चोटी पलटन भी एक है जिनकी टोपियों के पीछे चोटी लगी रहती है। हनुमान् आदि की पूंछ कोई अस्त्रविशेष का साधन भी हो, जैसे आजकल के सैनिक बन्दूक पीछे लटकाये रहते हैं, यदि वह बन्दूक और ऊपर हो तो पूंछ-सी ही लगेगी, जिसे वे धारण करने के कारण ही पूंछवाले होने से वानर कहलाये गये हों! पूंछ में स्प्रिंग और विद्युत् का प्रयोग हो उससे वे यथेष्ट उछल सकते हों और शत्रु पर प्रहार कर सकते हों! हनुमान् को स्थान-स्थान पर विद्युत् से उपमा तो दी ही है—

"निमेषान्तरेणोऽहं निरालम्बनमम्बरम् ।
सहसा निपतिष्यामि घनाद् विद्युदिवोत्थिता ॥"

—(वा० रा० कि० ६७।२५)

हनुमान् कहता है कि मैं एक निमेषमात्र में निरालम्बन आकाश में सहसा गति करूँगा मेघ से उठी विद्युत् की तरह।

"खे यथा निपतत्युल्का उत्तरान्ताद्विनिःसृता ।
दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ॥"

—(वा० रा० सु० १।६६)

हनुमान् आकाश में ऐसे चला जैसे पूंछसहित उल्का गति करती है।

"विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः ।
सूदयमास वज्रेण दैत्यानिव सहस्रदृक् ॥"

—(वा० रा० सु० ४३।४०)

हनुमान् आकाश में उड़ा और वज्र से राक्षसों को ऐसे हिंसित किया जैसे इन्द्र ने दैत्यों को।

"निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ।"

—(वा० रा० सु० ४६।२५)

महावेगवान् हनुमान् राक्षसों पर टूटा जैसे पर्वत पर विद्युद्राशि।

इससे हनुमान् आदि की पूंछ अस्त्रविशेष का साधन भी हो सकती है और उन्हें उचकाने ऊपर उछालने का उपायविशेष भी हो सकता है। अस्तु।"[1]

डॉ० जनार्दनदत्त शुक्ल 'पूंछ' के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"जहाँ तक पूंछ का सवाल है, यह शरीर का अभिन्न अंग न थी बल्कि वानरजाति ही की एक विशिष्ट जातीय निशानी थी, इसी कारण उन्हें प्रिय थी और इसी कारण लंका दहन करते समय हनुमान् को कोई शारीरिक कष्ट नहीं हुआ। सावरकर जी ने अपने अंडमान-कारावास के संस्मरणों में लिखा है कि उस द्वीप में पूंछ लगानेवाली एक आदिवासी जाति रहती है।......"[2]

---

१. "रामायण-दर्पण" पृष्ठ ६४ से ६८ तक।

२. मासिक पत्रिका "कादम्बिनी" नई दिल्ली, वर्ष २३, अक्टूबर १९८३ ई०, अंक १२, पृ० ६६

'हनूमान्' शब्द की व्युत्पत्ति—

(क) 'अङ्' 'हन्' हिंसा तथा गतिमान् अर्थयुक्त धातु से प्रत्यय 'अङ्' तथा 'हनुरस्ति अस्य अस्मिन् वा' इस अर्थ में तद्धितीय 'मतुप्' प्रत्यय 'नम्' एवं दीर्घादि करने पर 'हनूमान्' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'मतुप्' प्रत्यय से प्रकृति के अर्थ की अतिशय विशिष्टता अथवा विलक्षणता सूचित होती है। इस प्रकार 'हनूमान्' शब्द का अर्थ विलक्षण 'चिबुक'-(ठुड्डी)-वाला होगा।"[1]

(ख) 'हनुमान्' या 'हनूमान्' पद 'हनुमत्' या 'हनूमत्' शब्द की प्रथमा विभक्ति का एकवचनान्त रूप है। इस शब्द की शब्दशास्त्रीय व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से होती है—(१) 'हनु' या 'हनू' (जो ठुड्डी—ऊपरी जबड़े का वाचक है) शब्द के आगे 'तदस्य अस्ति' (पा० ५।२।६४) अर्थ में अथवा अतिशयन अर्थ में भी 'तद्धितीय' 'मतुप्' प्रत्यय के योग से 'हनुमत्' या 'हनूमत्' शब्द की सिद्धि होती है। यह शब्द सुग्रीव, सचिव, पवनपुत्र अथवा श्रीरामदूत हनुमान्जी का बोधक है।"[2]

(ग) "हन्+उन्=हनु। स्त्रीत्वपक्षे ऊङ्—हन्+ऊङ्=हनू+मतुप्=हनुमत् अथवा हनूमत्=हनुमान् या हनूमान्।"[3]

(घ) "हनु (नू) मत् (पुं) हनु (नू)+मतुप्=एक अत्यन्त शक्तिशाली वानर का नाम।……"[4]

---

१. दैनिक पत्र "सन्मार्ग" वाराणसी का "वेद विशेषांक" २ अगस्त सन् १९८१ ई०, वर्ष ३६, अंक १९२, पृष्ठ १९

२. मासिक पत्र "कल्याण" गोरखपुर का 'श्री हनुमान अंक' वर्ष ४९, जनवरी सन् १९७५ ई०, संख्या १, पृष्ठ ९८

३. वही, पृष्ठ १५५

४. पं० वामन शिवराम आप्टे कृत "संस्कृत-हिन्दी कोष" पृष्ठ ११६५ [Students Sanskrit-English Dictionary(स्टुडेण्ट्स संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी) का आर्य (हिन्दी) भाषा में अनुवाद, सन् १९६६ ई० में सर्वश्री मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ७ द्वारा प्रकाशित]

(ङ) हनुमत्, हनूमत् [√ हन्+उन्, स्त्रीत्वपक्षे ऊङ्] [हनु (न्)+मतुप्] = सुग्रीव-सचिव एवं श्रीरामदूत हनुमान् जी]"[1]

क्या वैदिक साहित्य में 'हनूमान् जी' की चर्चा है ?

मेरे विचार से चारों मूलसंहिताभाग वेदों में कहीं भी न 'हनूमान्' शब्द है और न उसकी चर्चा ही है।

कुछ पाश्चात्य वेदज्ञ व उनके चरण-चिह्नों पर चलनेवाले कुछ भारतीय विद्वानों को वेदों में 'हनूमान् जी' दृष्टिगोचर होते हैं जो उनकी कपोल-कल्पना ही है।

"ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८६, मन्त्र १-५; ८, १२, १३, १८, २०, २१, २२ में 'वृषाकपि' शब्द आता है। इसे कुछ विद्वान् 'हनूमान्' की कल्पना करते हैं। श्री ए० ए० मैकडॉनल लिखते हैं—"एक पुराकथा, जिसका कोई सर्वसामान्य महत्त्व नहीं है और जो केवल ऋग्वेद के किसी बाद के कवि का आविष्कार मात्र है, इन्द्र तथा 'वृषाकपि' से सम्बद्ध है, जिसका विवरण कुछ अस्पष्ट रूप से ऋग्वेद १०, ८६ में मिलता है। यह सूक्त इन्द्र और 'इन्द्राणी' के बीच उस 'वृषाकपि' नामक एक बन्दरसम्बन्धी विवाद का वर्णन करता है जो इन्द्र का प्रियपात्र था और जिसने इन्द्राणी की सम्पत्ति को क्षति पहुँचायी थी।··· फॉन श्राड्के इस कथा को एक व्यंग्य मात्र मानते हैं जिसमें इन्द्र और इन्द्राणी के नाम से एक राजा तथा उसकी पत्नी का आशय है।"[2]

श्री वेलंकर ने 'वृषाकपि' को दासों का राजा तथा इन्द्र का मित्र बतलाया है।[3]

---

१. "संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ" पृष्ठ १३२१ [सन् १९७५ ई० में सर्वश्री रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद २११००२ द्वारा प्रकाशित, पंचम संस्करण]

२. "Vedic Mythology का आर्य भाषा में श्री रामकुमार राय कृत अनुवाद "वैदिक माइथोलोजी" (वैदिक पुराकथाशास्त्र) पृष्ठ १२०-१२१ [सन् १९६१ ई० में चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

३. ऋग्वेद १०।८६।४ पर पादटिप्पणी

समीक्षा—'वृषाकपि' का अर्थ इन लालबुझक्कड़ों ने नहीं समझा है। लौकिक संस्कृत कोषों में भी इसका अर्थ 'हनूमान्' नहीं आता है—

"वृषाकपि: [वृष: कपि: अस्य, ब० स०, पूर्वपद दीर्घ, या वृषं धर्मं न कम्पयति √ कम्प्+इन्, न लोप]=सूर्य, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि।"[1]

अध्यात्म पक्ष में 'इन्द्र' आत्मा है, 'इन्द्राणी' बुद्धि है। 'वृषाकपि' मन है, जिसके साथ अहंकाररूपी 'हरितमृग' रहता है। मनुष्य जो आन्तरिक यज्ञ रचाता है, उसमें इन्द्रिय, प्राण आदि के समस्त हवियों का अर्पण आत्मा को ही किया जाना चाहिए। परन्तु साधना की अपरिपक्वावस्था में वह मन (वृषाकपि) को अपना अधिष्ठातृदेव मान बैठता है, तथा उसे ही सब हवियाँ देता है। बुद्धि इस मन से बहुत रुष्ट है, क्योंकि इसके साथ जो अहंकाररूपी मृग रहता है, वह सब हवियों को दूषित कर देता है। जो हवि अहंभाव के साथ देवता को अर्पित की जाती है वह सात्त्विक एवं परिशुद्ध हवि नहीं होती, अतः बुद्धि इसका विरोध करती है, तो भी आत्मा का इस मन के साथ स्नेह और उसे इसके साथ मिलकर ही सोमपान या हविर्ग्रहण रुचिकर है।......"[2]

आधिदैविक दृष्टि से लोकमान्य पं० बालगंगाधर तिलक ने अपनी 'ओरायन' (मृगशीर्ष) नामक अंग्रेजी पुस्तक में इस सूक्त की एक व्याख्या उपस्थित की है। उनका कथन है कि इस सूक्त में आकाश की उस प्राचीन स्थिति का उल्लेख है जब मृगशीर्ष नक्षत्र में वसन्त-सम्पात से आरम्भ होता था। इसे ही देवयान या सूर्य का उत्तरायण काल भी कहते थे। शरत्सम्पात से पितृयाण या दक्षिणायन काल चलता था। उस समय यज्ञ निरुद्ध हो जाते थे। जब यज्ञ चालू रहते हैं, उस समय इन्द्र तथा इन्द्राणी को सोमरस तथा हवि प्राप्त होती रहती है। तिलक जी के मत में प्रस्तुत सूक्त में वृषाकपि उस समय का सूर्य है जब वसन्त-सम्पात मृगशीर्ष

---

१. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ ११०२

२. डॉ० रामनाथ जी वेदालंकार, एम० ए०, पी-एच० डी० कृत "वेदों की वर्णन शैलियाँ" शोध प्रबन्ध, पृष्ठ १६६-१६७ [सन् १९७६ ई० में श्रद्धानन्द शोध संस्थान, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

नक्षत्र में था।"[1]

स्कन्द स्वामी अपने 'निरुक्त भाष्य' में कहते हैं कि ऐतिहासिक पक्षानुसार इन्द्राणी इन्द्र की भार्या तथा वृषाकपि इस नाम से प्रसिद्ध ऋषि है, किन्तु नैरुक्त पक्ष में इन्द्राणी 'माध्यमिक वाणी' एवं वृषाकपि 'आदित्य' है।[2]

राजनैतिक दृष्टि से 'इन्द्र' राष्ट्र का राजा हो सकता है, इन्द्राणी राजपरिषद् और वृषाकपि सामन्त राजा, जो प्रधान राजा या इन्द्र का प्रबल सहायक होने से उसका सखा है, अथवा उसी के द्वारा राज्याभिषिक्त किये जाने के कारण उसका पुत्र है। इन्द्र वृषाकपि के साथ सोमपान करता है। इसका आशय यह है कि सामन्त राजा अपने राज्य से जो कर (टैक्स) एकत्र करता है उसमें से कुछ अंश तो वह अपने राज्य में व्यय करने के लिए अपने पास रखता है तथा कुछ प्रतिशत अंश प्रधान राजा को देता है। सामन्त राजा का कोई अधिकारी है, जो उसका शीर्ष-स्थानीय है, तथा जो यह परामर्श देता है कि अपनी प्रजा से प्राप्त सारा कर अपने ही पास रखो, प्रधान राजा को मत दो एवं तुम स्वतन्त्र हो जाओ। यही 'हरित-मृग' है। उसकी कुमन्त्रणा के वशीभूत हो सामन्त वैसा ही करने लगता है, तब राज-परिषद् (इन्द्राणी) इस समस्या पर विचार करने के लिए बैठती है। राजपरिषद् के सदस्य यह विचार प्रस्तुत करते हैं कि वृषाकपि का सिर काट देना उचित है, अर्थात् उसे राज्यच्युत कर देना चाहिए।......"[3]

पाश्चात्य विद्वान् पारजिटर ने ही वृषाकपि को हनुमान् से जोड़ा है।[4]

---

१. Vrishakapi must, therefore, be taken to represent the Sun in Orion [Orion 1955, Tilak Bros, Poona, 2, pp. 189]

२. "इन्द्राणी माध्यमिकामिन्द्रस्य वा भार्याम्।......नेह प्रसिद्धो वृषाकपि ऋषिः। तर्हि? द्युस्थानोऽभिप्रेतः। निरुक्त ११.३८ का 'स्कन्दस्वामीभाष्य'। 'सख्युर्वंशाकपेर्ऋते सख्या वृषाकपिना आदित्येन ऋषिणा विनेत्यर्थः। निरुक्त ११.३९ का 'स्कन्दस्वामी भाष्य'।

३. "वेदों की वर्णन-शैलियाँ" पृष्ठ १६९-१७०

४. एफ० ई० पारजिटर—'Suggestions regarding Rigveda' १०.८६, जनरल ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९११ ई०, पृष्ठ ८०३ तथा आगे : १९१३ ई०, पृष्ठ ३९६

परन्तु पूर्वोक्त प्रमाणों से पारजिटर का भ्रमभञ्जन हो जाता है।

पण्डित चन्द्रमणि जी विद्यालंकार, पालीरत्न—वृषाकपि का अर्थ धर्म है जैसा कि महाभारतान्तर्गत मोक्षधर्म पर्व के निम्न श्लोक से (३४२ अ० ८७ श्लो०) विदित होता है—

कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥"[1]

गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित "महाभारत [पंचम खण्ड, शान्तिपर्व, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५३७४] में उपर्युक्त श्लोकसंख्या ८६ है।

(यहाँ श्रीकृष्णजी कहते हैं—)

पण्डित रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' कृत टीका—

"कपि' शब्द का अर्थ वराह एवं श्रेष्ठ है और वृष कहते हैं धर्म को। मैं धर्म और श्रेष्ठ वराहरूपधारी हूँ, इसलिए प्रजापति कश्यप मुझे 'वृषाकपि' कहते हैं।

स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, (पण्डित प्रियरत्नजी आर्ष)—

"वृषाकपिर्भवति वृषाकम्पनः, तस्यैषा भवति पुनरेहि वृषाकपे:" [निरुक्त ११।३६][2]

पुनः—'वृषाकपिः' इति द्युस्थानं देवतापदम्। वृषाकपिः—वृषाकम्पनः "वृषु सेचने" (भ्वादि०) "वृषशक्ति प्रबन्धे" (चुरादि०) ततः "कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः" (उणा० १।१५६) इति कनिन् प्रत्ययः, वृषा। "कपि चलने" (भ्वादि०) ततः—"कुण्ठिकम्प्योर्नलोपश्च-इः" (उणा०४।१४४) इः प्रत्ययः कपिः। वृषभिः प्रकाशस्य वर्षकै रश्मिभिः सहास्तं गच्छति प्राणिनोऽभिप्रकम्पयन् प्रकाशाभावेऽन्धकारे कम्पन्ते हि भयात्। तस्माद् वृषाकम्पनः सन् वृषाकपिः 'वृषन्' इत्यस्य आकारश्छान्दसः।"[3] —[निरुक्त १२।२८]

अर्थात्—'वृषाकपि' द्युस्थान में देवतापद है। प्रकाश के अभाव में अन्धकार

---

१. "निरुक्त भाष्य" उत्तरार्द्ध, दैवत कांड, पृष्ठ ६९७ [मार्च १९२६ ई०, प्रथम संस्करण, हरिद्वार]

२. "निरुक्त सम्मर्शः" पृष्ठ ८१७ [१९६६ ई० में लेखक द्वारा प्रकाशित, तथा आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर द्वारा प्राप्य, प्रथम संस्करण]

३. वही, पृष्ठ ८५७

से प्राणियों को भयभीत करता है, इसलिए निश्चित 'वृषाकपि' है।'

पण्डित भगवद्दत्त जी बी० ए०—"वृषाकपि: । अब जब रश्मिभिः—रश्मियों से अनिप्रकम्पयन्—चारों ओर से कंपाता हुआ [सूर्य] एति— प्राप्त होता है, तब वृषाकपि होता है।"[1]

अन्यत्र भी 'वृषाकपि' का अर्थ 'आदित्य' है—

वृषेव कपिलो भूत्वा यन्नाकमधिरोहति ।
वृषाकपिरसौ तेन विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।
रश्मिभिः कम्पयन्नेति वृषा वर्षिष्ठ एव सः ।६७।।
वृषाकपिरिति वा स्याद् इति मन्त्रेषु दृश्यते ।।६८।।
त्रिषु धन्वेति हीन्द्रेण प्रयुक्तो वारिषाकपे ।

—[शौनकीय वृहद्देवता २.६३]

पण्डित रामकुमारराय प्राध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय कृत अनुवाद —"यत: एक कपिल-वृषभ' का रूप धारण करके वह आकाश में ऊपर चढ़ते हैं, अतः 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः" (ऋग्वेद १०।८६।२) ऋचा में यह 'वृषाकपि' है (७) हैं, (अथवा) यह उच्चतम वृषभरश्मियों से कम्पित करते हुए जाते हैं; क्योंकि यह सन्ध्या-समय प्राणियों को प्रसुप्त करते हुए अपने गृह को जाते हैं, इस कारण इनका 'वृषाकपि' नाम इस कर्म से भी व्युत्पन्न हुआ हो सकता है। वृषाकपि सूक्त की 'धन्व' से आरम्भ होनेवाली तीन ऋचाओं (ऋग्वे० १०।८६।२०-२२) में इन्द्र ने इनकी इसी प्रकार स्तुति की है।[2]

श्री के० सी० चट्टोपाध्याय का मत है—"वृषाकपि आदित्य है जिन्हें महाभारत में 'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च' कहा गया है। इनके मत से कवित्व ढंग से आदित्य को वाराह बताया गया है।"[1]

---

१. "निरुक्त भाषार्थ तथा भाषाभाष्य" पृष्ठ ६३४ [संवत् २०२१ वि०, प्रथम संस्करण, श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर]
२. 'शौनकीय बृहद्देवता' पृष्ठ ४६ [संवत् २०२२ वि० में चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]
३. 'वृषाकपि हिम' इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, ख० १, १९२५ ई०, पृष्ठ १०४, १३६, १४८

श्री उमाकान्त पी० शाह का मत है कि वृषाकपि को हनूमान् से जोड़ना ठीक नहीं है, क्योंकि संस्कृत शब्द हनुमन्त नहीं अपितु हनुमान् या हनुमत् है, दूसरे हनुमान् का वृषाकपि नाम पीछे के संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता।"[1]

ब्राह्मणग्रन्थों में वृषाकपि—

"आदित्यो वै वृषाकपिः"—

[गां० उ० ६।१२ श्री हंसराज कृत वैदिक कोषः, प्रथम सं०, पृष्ठ ५२५]

"आत्मा वै वृषाकपिः" [ऐतरेयब्राह्मण ६।२९]

अतः वेदों से 'वृषाकपि' को 'हनूमान्' बतलाना भारी भ्रम है।

कुछ प्राच्य विद्वानों के कल्पित व भ्रमपूर्ण अर्थ—

"अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं………" [ऋ०१०.१२.१]

श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी उदासीन—"अग्निम्, अग्रणी, वानराग्रणी, वायु-पुत्र को अथवा दैत्य-दाव-दहन (दैत्य-वन के दाहक अग्नि) को………"[2]

इसी अर्थ की प्रतिलिपि मात्र पण्डित अर्जुन पाण्डेय ने अपने "ऋग्वेद में राम-दूत श्री हनुमान्" शीर्षक लेख में की है।[3]

समीक्षा—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १२, मंत्र १ का सही अर्थ महर्षि दयानन्दजी महाराजकृत यूं है—"(अग्निम्) सर्वपदार्थच्छेदकम् (दूतम्) यो दावयति=देशान्तरं पदार्थान् गमयत्युपतापयति वा तम्।………"=सब पदार्थों के छेदक भौतिक अग्नि को (दूतम्) पदार्थों को देशान्तर में प्रापक अथवा उनके उपतापक………"

श्री सायणाचार्य ने भी 'अग्नि' का अर्थ वायुपुत्र………आदि अर्थ नहीं किया है। उन्होंने भी अग्नि का अर्थ देवविशेष की कल्पना की है, अतः इन लोगों का

---

१. "वृषाकपि इन ऋग्वेद' जनरल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट एम० एस० यूनिवर्सिटी आफ बड़ोदा, बड़ोदा, खण्ड ८, सितम्बर १९५८ ई०, नं० १, पृष्ठ ४५

२. "विश्वतोमुख भगवान् वेद" पृष्ठ ११३-११४ [संवत् २०३७ वि० में राज-धाम, गंगेश्वरधाम, निरंजनी अखाड़ा-मार्ग, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]; मासिक पत्र "कल्याण" गोरखपुर का "श्री हनुमान् अंक" वर्ष ४९, जनवरी १९७५ ई०, संख्या १, पृष्ठ ३७।

३. दैनिक "सन्मार्ग" वाराणसी का "वेद विशेषांक"

अर्थ भ्रमपूर्ण है।

"ममच्चन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप्प हनू जघान……"

—[ऋ० ४।१८।६]

स्वामी गंगेश्वरानन्दजी —"हे इन्द्र ! 'ते' आपके सान्निध्य में 'चन' निश्चित, 'ममत्' प्रमाद करते हुए 'व्यंस' विशाल स्कन्धयुक्त आपके ऐरावत को फल मानकर खाने के लिए पकड़ने की इच्छा से भयंकर विशाल शरीरधारी कपिराज महावीर 'निविविध्वान्' आपको लगातार सताने लगा।'[1]

समीक्षा—उदासीनजी का अर्थ ऊटपटांग, वैदिक व्याकरण, कोष व निघण्टु के सर्वथा ही विपरीत है। यह उनकी कपोलकल्पना ही है।

शायद 'हनू' शब्द को देखकर आपको भ्रम हो गया है। 'हनू' शब्द का अर्थ (हनू) मुखपार्श्वौ (महर्षि दयानन्दजी सरस्वती) है।

महर्षि दयानन्दजीकृत भावार्थ—"हे राजन् ! यो विरुद्धेन कर्मणा प्रजासु विचेष्टते तं सदा निबद्धं शस्त्रैर्व्यथितं कृत्वा सर्वतो निबध्नीहि"

"हे राजन् ! जो विरुद्ध कर्म से प्रजाओं में चेष्टा करता है उसे सदा दृढबंधे को शस्त्रों से व्यथित कर सब प्रकार से बांधो।"[2]

पौराणिक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पण्डित गौरीनाथ झा 'व्याकरणतीर्थ' भी 'हनूमान्' परक अर्थ नहीं करते हैं। उन्होंने 'हनू' का अर्थ 'इन्द्र के हनुद्वय (चिबुक अधोभाग)' अर्थ किया है।[3]

"अनु स्वधाम क्षरन्नापो अस्याऽवर्धत मध्यम आ नाव्यानाम्। सध्रीचीनेन मनसातमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि धून्"—ऋग्वेद १।६३।११

स्वामी गंगेश्वरानन्दजी उदासीन—"…………समुद्र के मध्य वर्तमान श्री·

---

१. "विश्वतोमुख भगवान् वेद" पृष्ठ ११५; तथा "सन्मार्ग" का 'वेदविशेषांक' पृष्ठ १५२ [उदासीन जी के अर्थ की नकल] तथा मासिक 'कल्याण' का 'हनुमान् अंक' पृष्ठ ३८

२. "ऋग्वेद भाष्यम्" चतुर्थमण्डलम् (षष्ठभागात्मकम्) पृष्ठ २३६ [संवत् १९८३ वि०, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर]

३. "ऋग्वेद-संहिता" (सरल हिन्दी टीका सहित), तृतीय अष्टक, पृष्ठ १५४ [१९९० वि० संवत्, प्रथम संस्करण, सुलतानगंज]

हनुमान् अभिवृद्ध हुए, उन्होंने विशाल कृति धारण कर ली।………"[1]

समीक्षा—शायद 'हन्मना' शब्द को देखकर उदासीनजी को भ्रम हुआ है। आपका अर्थ निघण्टु, निरुक्त व व्याकरण के सर्वथा विरुद्ध है। सही अर्थ देखिए—

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती—"(हन्मना) हन्ति येन तेन=हनन करने के साधन।

भावार्थ—'यथा विद्युता वृत्रं हत्वा निपातिता वृष्टिर्यवादिकमन्नं नदीतडाग-समुद्रजलं च वर्धयति' तथैव मनुष्यैः सर्वेषां शुभगुणानां सर्वतो वर्षणेन प्रजाः सुख-यित्वा शत्रून् हत्वा विद्यासद्गुणान् प्रकाश्य सदा धर्मः सेवनीय इति।"="जैसे बिजुली के द्वारा मेघ को मारकर पृथिवी पर गिराई हुई वृष्टि यव आदि प्रत्येक अन्न को, और नदी, तड़ाग, समुद्र के जल को बढ़ाती है, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि सब प्रकार से सब शुभगुणों की वर्षा से प्रजा को सुखी कर शत्रुओं को मारकर, और विद्यावृद्धि से उत्तम गुणों का प्रकाश करके धर्म का सेवन सदैव किया करें।"

श्री सायणाचार्यजी ने भी 'हनूमान्' परक अर्थ नहीं किया है। उनका भाष्य है, "आपः जलानि अस्य इन्द्रस्य स्वधाम् अन्नं व्रीह्यादिरूपमनुपलक्ष्य अक्षरन् मेघाद् वृष्टा अभवन्। तदानीमयं वृत्रः नाव्यानां नावा तरणयोग्यानां बह्वीनामपां मध्ये आ समन्तात् अवर्धत वृद्धि प्राप्तः। प्रभूतजले वर्त्तमानोऽपि न ममार किन्तु अभि-वृद्ध एव। तदानीम् इन्द्रः सध्रीचीनेन सहगच्छता मनसा युक्तं तं वृत्रम् ओजिष्ठेन अतिबलयुक्तेन हन्मना हननसाधनेन वज्रेण अभिद्यून् कतिचिद् दिवसानभिलक्ष्य अहन् तेषु दिवसेषु हतवान्।"

"जल इस इन्द्र के व्रीहादि अन्न का ध्यान न रखकर मेघ से वृष्टिरूप में गिरे। उस समय यह वृत्र नाव से तैरने योग्य बहुत जलों में चारों तरफ वृद्धि को प्राप्त हुआ। वृत्र बहुत जल में भी मरा नहीं। तब इन्द्र ने साथ जाते हुए मन से युक्त उस वृत्र को बहुत शक्तिशाली मारने के साधन वज्र से कुछ दिनों के बाद मारा।"

पण्डित गोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पण्डित गौरीनाथ झा' व्याकरण-तीर्थ—"प्रकृति के अनुसार जल बहने लगा, किन्तु वृत्र नौकागम्य नदियों के बीच में बढ़ा। तब इन्द्र ने महाबलशाली और प्राण-संहारी आयुध द्वारा कुछ ही दिनों

१. "विश्वतोमुख भगवान् वेद" पृष्ठ ११७; 'कल्याण' का श्री हनुमान् अंक, पृष्ठ ३६

में स्थिर-मना वृत्र का वध किया था।"[1]

इन दोनों के अर्थ से सहमत न होते हुए भी मुझे यह प्रदर्शित करने के लिए देना पड़ा कि इस मन्त्र का अर्थ 'हनूमान्' परक नहीं है।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ —[ऋ० १।१।१]

स्वामी गंगेश्वरानन्द उदासीन की कल्पना—'यज्ञस्य' संगमनमैत्री के निमित्त प्रथम सुग्रीव द्वारा श्रीराम के समीप प्रेषित 'देवम्' विजिगीषु 'ऋत्विजम्' समुद्र पार करके राक्षसवृन्द के हृदय को भयभीत करनेवाले, 'होतारम्' युद्ध के लिए अशोक वाटिका में मन्त्री, मन्त्री के पुत्र, रावण के पुत्र अक्षयकुमार को ललकारने पर उपस्थित उन सबके संहारक, 'रत्नधातमम्' श्रीरामप्रदत्त अंगुलीयक अर्थात् रत्नजटित अंगूठी के धारक तथा सीताप्रदत्त चूड़ामणि के ग्राहक। 'पुरोहितम्' दूतं, 'अग्निं' वायुपुत्र हनुमान की 'ईळे' स्तुतिपूर्वक वन्दना करता हूँ।[2]

समीक्षा—कल्पना से दूर इन लालबुझक्कड़ों के अर्थ हैं। ऐसा न तो श्री सायणाचार्य और न किसी प्राच्य व प्रतीच्य विद्वान् ने ही स्वीकार किया है।

सत्यार्थ देखिए—

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने अपने 'ऋग्वेदभाष्य' में 'अग्नि' का 'परमात्मा' व 'भौतिक अग्नि' दो प्रकार के अर्थ किये हैं।

[भाष्य लम्बा होने से पूरा न देकर केवल भावार्थ दिया जा रहा है—]

"अत्राग्नि शब्देन परमार्थ-व्यवहार-विद्यासिद्धये परमेश्वर-भौतिकौ द्वावर्थौ गृह्येते। पुरा आर्य्यैर्याऽश्वविद्या नाम्ना शीघ्रगमनहेतुः शिल्पविद्यासम्पादितेति श्रूयते, साग्निविद्यैवासीत्। परमेश्वरस्य स्वयंप्रकाशत्वसर्वंप्रकाशकत्वाभ्यामनन्त-ज्ञानवत्त्वात् भौतिकस्य रूपदाहप्रकाशवेगछेदनादिगुणवत्त्वाच्छिल्पविद्यायां मुख्य-हेतुत्वाच्च [अग्नि शब्दस्य] प्रथमं ग्रहणं कृतमस्तीति वेदितव्यम्।"

(अग्निमीळे०) [इस मन्त्र में] परमार्थ और व्यवहार-विद्या की सिद्धि के लिए 'अग्नि' शब्द करके परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लिये जाते हैं। जो पहले

१. "ऋग्वेदसंहिता" (सरल हिन्दी टीकासहित), प्रथम अष्टक, पृष्ठ ४६
२. "विश्वतोमुख भगवान् वेद" पृष्ठ ११६, मासिक 'कल्याण' का 'श्री हनुमान् अंक' पृष्ठ ४० व 'सन्मार्ग' का "वेद विशेषांक" पृष्ठ १५३

समय में आर्य लोगों ने अश्वविद्या के नाम से शीघ्रगमन की हेतु शिल्पविद्या आविष्कृत की थी, वह अग्निविद्या की ही उन्नति थी। [परमेश्वर के] आप ही आप प्रकाशमान सबका प्रकाश और अनन्त ज्ञानवान् होने से, तथा भौतिक अग्नि के रूप-दाह-प्रकाश-वेग-छेदन आदि गुण और शिल्पविद्या के मुख्य साधक होने से अग्नि शब्द को प्रथम ग्रहण किया है [ऐसा समझना चाहिए]।

इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य 'अग्नि' है जो मन्त्र में भी साक्षात् पढ़ा है।

महर्षि दयानन्दजी ने यहाँ श्लेष अलंकार से 'अग्नि' शब्द का ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थ ग्रहण किया है।

श्री सायणाचार्य का अर्थ 'हनूमान्' परक नहीं वरन् उन्होंने 'अग्नि' का अर्थ 'अग्नि नामक देव' किया है।

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पं० गौरीनाथ झा व्याकरण-तीर्थ—"यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमान्, देवों को बुलानेवाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।"[1]

स्वामी हरिप्रसाद जी उदासीन—"मैं सबके अग्रणी की पूजा करता हूँ, जो प्रथम ही सबका हितकारी, (इस नैसर्गिक) यज्ञ (ब्रह्माण्ड) का देव और कर्त्ता तथा सबको अपने पीछे चलने के लिए अपनी ओर बुलानेवाला और सबसे बढ़कर अभीष्ट पदार्थों का देनेवाला है।"[2]

क्या इस उदासीन विद्वान् से भी अपने को स्वामी गंगेश्वरानन्दजी अधिक विद्वान् समझते हैं?

निरुक्त ७।१४ में 'अग्नि' का भौतिक अर्थ दिया है—

"हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां......" [ऋ० २।३५-१०]

स्वामी गंगेश्वरानन्दजी उदासीन—"...इस 'अपांनपात्' देव हनुमान् के लिए 'अन्नम्' अन्नोपलक्षित मधुर मोदकादि पदार्थ 'ददाति' देते हैं, उन्हें मोदकादि भोग लगाते हैं।"[3]

---

१. "सानुवाद ऋग्वेदसंहिता" प्रथम अष्टक, पृष्ठ १

२. "वेद सर्वस्व" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ८१

३. "विश्वतोमुख भगवान् वेद" पृष्ठ १२०-१२१ तथा 'सन्मार्ग का 'वेद विशेषांक' पृष्ठ ५३ तथा 'कल्याण' का 'श्री हनुमान् अंक" पृष्ठ ४१

समीक्षा—इस मन्त्र में वायुपुत्र 'हनूमान्' का ढूंढना भी खपुष्प के सदृश है। उदासीनजी की कल्पना की लम्बी उड़ान है। सत्यार्थ देखिए—

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती—"भावार्थ:—योऽग्निर्वायुजोऽखिलवस्तुदर्शकोऽन्तर्हितो सर्वविद्यानिमित्तोऽस्ति तं विज्ञाय प्रयोजनसिद्धिः कार्य्या।"

"जो अग्नि-पवन से उत्पन्न हुआ समस्त पदार्थों को दिखानेवाला सर्वपदार्थों के भीतर रहता हुआ सर्वविद्याओं का निमित्त है, उसको जानकर प्रयोजन सिद्ध करना चाहिए।"[1]

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व गौरीनाथ झा 'व्याकरणतीर्थ'—"वह हिरण्यरूप, हिरण्याकृति, और हिरण्यवर्ण हैं। वह हिरण्यमय स्थान के ऊपर बैठकर शोभा पाते हैं। हिरण्यदाता उन्हें अन्न देते हैं।"[2]

अतः आपका अर्थ कल्पनामात्र ही है।

पं० श्रीरामकुमार दास जी 'रामायणी' का 'कल्याण' के 'श्री हनुमान् अंक' पृष्ठ ७१ से ७३ तक में "वेदों में श्री हनुमान" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है।

आपने 'मन्त्र रामायण' श्री पं० नीलकण्ठ भाष्य का 'हिन्दी अनुवाद' "वेदों में रामकथा" नामक पुस्तक भी लिखी है।[3]

इसी प्रकार "वेद रहस्यम्" रहस्यमार्तण्डभाष्यम्[4] में ऊटपटांग कल्पना करके वेदों में 'हनूमान्' को खोजने का प्रयास किया है।

"देवास आयन् परशूं रबिभ्रन्......" —[ऋ० १०।२८।८]

इस मन्त्र से हनूमान् जी द्वारा अशोक वाटिका उजाड़ने की कल्पना पं० श्रीरामकुमार दास जी ने की है।[5]

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम्" (चतुर्थ भागात्मकम्), द्वितीय मण्डलम्, पृष्ठ ३२१ [संवत् २०१६ वि०, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, तृतीयावृत्ति]
२. "सानुवाद ऋग्वेदसंहिता" द्वितीय अष्टक, पृष्ठ १८३
३. प्रथमावृत्ति सेठ श्री ब्रजमोहनदासजी 'विजय' शुजालपुर (म० प्र०) द्वारा प्रकाशित।
४. प्रथमावृत्ति, श्री त्रिदण्डि संस्थान, श्रीरामानन्द पीठ, श्री शेषमठ-विश्राम द्वारका (शींगड़ा) सौराष्ट्र द्वारा प्रकाशित।
५. कल्याण' का 'श्री हनुमान् अंक' पृष्ठ ७१, 'वेदों में रामकथा' पृष्ठ १४२ तथा 'वेदरहस्यम्' पृष्ठ १७४

समीक्षा—मन्त्र का देवता 'इन्द्र' है। सत्यार्थ के लिए देखिए—स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड'—

भावार्थ—प्राणिशरीर के दूषित हो जाने पर शल्यचिकित्सक तथा ओषधिचिकित्सक नाड़ियों में बहते हुए रक्त के स्थान पर जलवाले अंग को शस्त्र से छेदकर या ओषधों से दग्ध कर स्वस्थ बनाते हैं……।[1]

"सुपर्ण इत्थानखमासिषायावरुद्धः………" [ऋ० १०।२८।१०]

पण्डित श्री रामकुमारदासजी—इस मन्त्र से रावण द्वारा श्रीहनूमान्‌जी को ब्रह्मपाश का प्रयोग करवाया…"[2]

समीक्षा—स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड' का सत्यार्थ'—"… (सुपर्णः)। शरीरे प्राणः "प्राणो वै सुपर्णः" (श० ब्रा० ?।८)………

"शरीर में प्राण अपने प्रबल बन्धन को बाँधता है या फैलाता है, अपने क्षेत्र में जैसे सिंह अपने रक्षास्थान को सुरक्षित रखता है……।"[3]

इसलिए वेदमन्त्रों में जो अनर्गल अर्थ श्री नीलकण्ठ आदि पौराणिकों ने हनूमान् जी को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये हैं वे यौगिक अर्थ नहीं हैं वरन् कल्पनामात्र हैं।

पण्डित दीनानाथजी शास्त्री, सारस्वत का महर्षि दयानन्दजी पर आक्षेप—

"आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी ने भी अपने 'संस्कृत वाक्य-प्रबोध' के 'ग्राम्य पशु प्रकरण' में पृष्ठ ४५ पर 'अयं महाहनुत्वाद् हनुमान् वर्तते' यह वन्दर बड़ी ठुड्डीवाला होने से हनुमान है—ऐसा संकेत किया है, जिसका वास्तविक इतिहास 'वाल्मीकीय रामायण' (६।२८।११५) में आया है।"

"……यदि हनुमान उन्हें मनुष्य रूप में इष्ट होते तो स्वामी जी उन्हें किसी मनुष्य-प्रकरण में रखते, ग्राम्य पशु-प्रकरण में नहीं।"[4]

समीक्षा—महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने लिखा है—

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम्" दशममण्डलम्, प्रथमो भागः, पृष्ठ २३५-२३६ [विक्रम संवत् २०३१, अजमेर]
२. 'कल्याण' का 'श्रीहनुमान् अंक' पृष्ठ ७१-७२; 'वेदों में रामकथा' पृष्ठ १४३; 'वेद-रहस्यम्' पृष्ठ १७६
३. "ऋग्वेदभाष्यम्" दशममण्डलम्, प्रथमो भागः, पृष्ठ २३७-२३८
४. "कल्याण' का श्री हनुमान् अंक" पृष्ठ १०४-१०५

"अयं महाहनुत्वाद्धनुमान्वर्त्तते = यह बन्दर बड़ी ठोड़ीवाला होने से हनुमान् है।"[1]

महर्षिजी पर आक्षेप करना भूल है; इससे रामायणकालीन 'हनूमान् जी' बन्दर सिद्ध नहीं हो सकते हैं। एक शब्द के कई अर्थ होते हैं। वानर, बन्दर, हनूमान् 'ग्राम्य पशु' हैं और रामायणकाल में एक मनुष्य-जाति के रूप में भी किष्किन्धा में अभी भी पाये जाते हैं जिसका विशद वर्णन आगे है। अतः महर्षिजी का लेख सही है।

क्या वालि, सुग्रीव आदि को आप (शास्त्रीजी) ग्राम्य बन्दर समझेंगे? या केवल आक्षेप करना ही जानते हैं?

□□

१. "संस्कृत वाक्य-प्रबोधः" पृष्ठ ३६ [वि० संवत् २०३४ में वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, अजमेर-१ द्वारा प्रकाशित, चतुर्दशावृत्तिः]